कल्याणा



श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या





अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, सितम्बर २०२० ई० पूर्ण संख्या ११२६

अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी

अतुलितबलधामं

हेमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं . ज्ञानिनामग्रगण्यम्।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [-को ध्वंस करने]-के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण

गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्जीको

मैं प्रणाम करता हूँ।[श्रीरामचरितमानस]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, सितम्बर २०२० ई० विषय-सूची पुष्ठ-संख्या पृष्ठ-संख्या विषय विषय १५- मनके जीते जीत (डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत)....... २९ १ - अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी ३ १६- भज मन रामचरन सुखदाई **[कविता]** ३१ २- कल्याण...... ५ ३- श्रीरामजन्मभृमि अयोध्याका इतिहास १७- वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन **[तीर्थ-चिन्तन]** (प्रो॰ श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज') ३२ [आवरणचित्र-परिचय]..... ६ ४- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे १८- सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी [**संत-चरित**] (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)७ (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) ३६ ५- देशका नामकरण (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)९ १९- सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति ६- भगवानुका मंगल विधान [सत्य घटना] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३९ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... ११ २०- साक्षीभाव (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, ७- प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय१२ अखिल भारतीय धर्मसंघ)४० २१- साधनोपयोगी पत्र४३ ८- मरणोपरान्तकी क्रिया (श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास).........१३ ९- शरीरसे अलगावका अनुभव [साधकोंके प्रति] (१) जीव और आत्मा४३ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १७ (२) हनुमान्जी और रावणका स्वरूप४३ १०- आसुरी खान-पान-रोगोंको निमन्त्रण......१९ २२- **व्रतोत्सव-पर्व** [आश्विनमासके व्रत-पर्व].....४५ ११- श्राद्ध—क्या, क्यों, कैसे ? (श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी) २० २३- **कृपानुभृति**—स्वर्गसे वापसी४६ १२- श्राद्धसे जगतुकी तृप्ति२४ २४- पढ़ो, समझो और करो४७ १३- अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें [सम-सामयिक] (१) सादा जीवन, उच्च विचार.....४७ (डॉ॰ श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी., (२) भूल४८ एल.एल.एम., पी-एच.डी.)२५ (३) गुस्सा न आनेका उपाय४९ २५- मनन करने योग्य५० १४- झाँकी देखिय अवधपुरी की [कविता] लक्ष्मीजीके अनुकूल वातावरण तैयार करें५० (अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप') २८ चित्र-सूची ४- पतनकी ओर बढ़ता अविवेकी सारथी..... (इकरंगा)......८ १- श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या... (रंगीन) आवरण-पृष्ठ २- अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्जी... (") ... मुख-पृष्ठ ५- भारतमाता (")...... ९ ३- भगवान्की ओर बढ़ता चतुर सारथी...... (इकरंगा) ७ ६ - काशीविश्वनाथ मन्दिर, वाराणसी (")) ३२ जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥ जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ पंचवर्षीय शुल्क एकवर्षीय शुल्क जगत्पते। गौरीपति विराट् जय रमापते ॥ ₹ २५० ₹ १२५० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (` 3,000) Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (` 15,000) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org £ 09235400242 / 244 सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पहें।

संख्या ९] कल्याण कल्याण याद रखों—'स्व' तथा 'स्वार्थ' जितना ही पूजा' ही होती है। संकीर्ण और संकुचित होगा, उतना ही वह दु:ख, याद रखों—'क्षुद्र स्वार्थ'के कारण ही मनुष्य केवल अपने 'शारीरिक सुख' और 'नामके यश'के कष्ट, संताप, शोक, विषाद तथा भय उत्पन्न करेगा। लिये चिन्तित रहता है और दिन-रात उसीकी प्राप्तिके जो लोग संकृचित 'स्व'में रहते हैं, और सीमित क्षुद्र 'स्वार्थ'के द्वारा पराजित हैं, वे स्वयं तथा प्रयत्नमें लगा रहता है, उसे विश्वात्माकी भावना उनकी योग्यता केवल 'मैं', तथा 'मेरे' 'शरीरके एवं भगवत्पुजाके लिये भगवत्स्मरण करनेका अवकाश नाम' तथा 'शरीर' तक ही केन्द्रित हो जाती है। ही नहीं मिलता। पुजाकी बात तो दुर रही, क्षुद्र याद रखो — जब शरीरके नाम तथा शरीरतक स्वार्थके लिये भी उससे भगवत्स्मरण नहीं हो ही 'स्व' रह जाता है, तब 'स्व' वैसे ही गन्दा पाता। वह दिन-रात भोगचिन्तनमें ही लगा रहता है होता है, जैसे छोटेसे गड्ढेमें इकट्ठा हुआ पानी। और उसके फलस्वरूप मनुष्य-जीवनका सर्वनाश कर फिर उस मनुष्यका 'स्वार्थ' गन्दा हो जाता है और बैठता है। वह दूसरोंको दु:ख देकर सुखी होना चाहता है, *याद रखो* — समस्त जगत्के समस्त प्राणी क्रोधके द्वारा सद्भाव प्राप्त करना चाहता है, कलहपूर्ण भगवान्से निकले हैं, सभी प्राणियोंमें एकमात्र भगवान् साधनोंके द्वारा शान्ति पाना चाहता है और घृणाके व्याप्त हैं। भगवान् ही आत्मरूपसे सर्वभूतोंके आशयमें द्वारा प्रेम-लाभ करना चाहता है। पर उसका यह स्थित हैं, अतएव भगवत्स्वरूपके नाते सभी पुज्य सारा प्रयत्न बालुमेंसे तेल निकालनेकी तरह निष्फल और सेव्य हैं तथा आत्माकी दृष्टिसे सभी अपने तो होता ही है, उलटा बुद्धिको बिगाड़कर पाप स्वरूप ही हैं, यह समझकर अपने 'स्व' का विस्तार पैदा करनेवाला होता है। करो, सबसे सदा-सर्वदा सम्पूर्णरूपमें अपने ही याद रखो-'शरीरके नाम' तथा 'शरीर'तक आत्मस्वरूपका विस्तार करो। फिर सबका स्वार्थ जिसका 'स्व' सीमित हो जाता है, वह यदि कभी (स्व-अर्थ) ही तुम्हारा स्वार्थ बन जायगा। वह कोई अच्छा काम भी करता है तो 'नामकी जय-फिर बहते हुए पवित्र सरिता-जलकी भाँति स्वच्छ, जयकार' सुननेके लिये और मांसपिण्ड 'शरीरकी निर्मल और सर्वभूतहितकर हो जायगा। पूजा' करवानेके लिये करता है। सुन्दर शुभ याद रखो-भगवान् ही आत्मारूपसे प्रकाशित कर्म यदि समस्त जगत्के प्राणियोंमें 'स्व'का हैं, अतएव यदि अपनेको अलग भी समझो तो, इस विस्तार करके उन सबके हितको स्वार्थ समझकर रूपमें कि, 'मैं सेवक हूँ तथा चराचर जगत्-स्वरूप हो, सबको सुख पहुँचानेकी पवित्र भावनासे हो तो भगवान् मेरे सेव्य हैं'-ऐसा दृढ़ निश्चय हो जानेपर उससे भगवानुकी बडी प्रसन्नता प्राप्त होती है। तुम्हारे द्वारा जो कुछ भी होगा, सब भगवान्का उसमें एक विलक्षण रस, एक पवित्र माधुर्य पूजन ही होगा और समस्त क्रिया तथा चेष्टा तथा आत्मसन्तोष एवं शान्ति रहती है, पर वहाँ न भगवत्पुजन-रूप होनेसे परम पवित्र तथा परम श्रेयस्कर तो 'नामकी जय-जयकार' होती है और न 'शरीरकी हो जायगी। 'शिव'

श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याका इतिहास आवरणचित्र-परिचय-

सात मोक्षदायिनी नगरियोंमें प्रथम नगरी अयोध्या वैष्णवदासके चिमटाधारी शिष्य तथा गुरुगोविन्द सिंहके सिख सतयुगमें महाराज मनुने बसायी थी। सरयु नदीके किनारे वीरोंने सेनापतिसहित मुगल सेनाका संहार कर डाला। चार

वर्षतक औरंगजेबने हिम्मत नहीं की। किंतु चार वर्ष बाद बसी यह नगरी १२ योजन (१४४ कि० मी०) लम्बी तथा ३

योजन (३६ कि॰मी॰) चौड़ी थी। चक्रवर्ती सम्राट्दशरथजीने अचानक हमलाकर मुगल सेनाने पुन: कब्जा कर लिया। अवधके नवाब सआदत अलीके समय अमेठीके राजा

इसे विशेष रूपसे बसाया था। इसमें सभी प्रकारके बाजार थे तथा इसकी रक्षा खाइयों, किवाड़ों और शतिघ्नयोंसे होती

थी। महाराज इक्ष्वाकु, अनरण्य, मान्धाता, प्रसेनजित्, भरत,

सगर, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, अम्बरीष-

जैसे सम्राटोंकी यह राजधानी रही है। श्रीरामजीकी आज्ञासे इसके प्रधान देवता हनुमानुजी हैं। श्रीरामके परमधाम पधारनेपर

यह नगरी जनशून्य हो गयी थी। तब महाराज कुशने इसे

पुन: बसाया था। यह पावन नगरी पुन: लुप्त हो गयी थी,

तब लगभग २५०० वर्ष पूर्व उज्जयिनीके सम्राट् विक्रमादित्यने इसकी खोजकर इसे पुन: बसाया। १५२८ ई०में बाबरके सेनापित मीर बाँकीने यहाँके श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिरको

ध्वस्त किया, तभीसे हिन्दू जनता, राजा तथा संत-समाज इसकी मुक्तिके लिये संघर्षरत रहे हैं। श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिरकी रक्षाके लिये संघर्षका लम्बा इतिहास संक्षेपमें इस

प्रकार है— बाबरके पुत्र हुमायूँके शासनकालमें हसवरके स्वर्गीय

राजा रणविजयसिंहकी महारानी जयराजकुमारीने तीस हजार

स्त्री सैनिकोंके साथ मन्दिरपर पुनः अधिकार कर लिया।

उनके गुरु स्वामी रामेश्वरानन्दने हिन्दू-जनजागरण किया। किंतु तीसरे दिन हुमायूँकी सेना आ गयी और पुन: मुसलमानोंका

कब्जा हुआ। अकबरके समयमें हिन्दुओंने बीस बार आक्रमण किया, किंतु उन्नीस बार असफल रहे। २०वीं बार रानी और

उनके गुरु बलिदान हो गये, किंतु हिन्दुओंने चबूतरेपर कब्जाकर राम मंदिर बनाया। जहाँगीर एवं शाहजहाँके समयमें

शान्ति रही। औरंगजेबने जाँबाजके नेतृत्वमें सेना भेजी, पर

स्वामी वैष्णवदासके दस हजार चिमटाधारी साधुओंने मुगल-गयी। इस प्रकार मन्दिर-निर्माणका मार्ग प्रशस्त हुआ। सेनाको भगा दिया। तब औरंगजेबने प्रधान सेनापति सैयद [डॉ॰ श्रीराम अवतारजी कृत 'जहँ जहँ रामचरन चलि

भजन-कीर्तन भी होने लगा, परंतु मुस्लिम पक्षको वहाँ हिन्द्र भावनाओंके अनुरूप राष्ट्र-देवता भगवान् श्रीरामका भव्य मन्दिर बनने देना स्वीकार्य नहीं था। इसके लिये

आन्दोलन हुआ, जिसमें अनेक हिन्दू भक्तोंने अपनी आहुति दी। अन्ततोगत्वा ६ दिसम्बर १९९२ को आन्दोलनरत हिन्दू जनताने बाबरी ढाँचा ध्वस्त कर दिया। तब विवाद उच्च न्यायालयमें गया। उच्च न्यायालयने

गुरुदत्तसिंहने नवाबके साथ घोर संग्रामकर पुन: हिन्दुओंका

कब्जा करवाया। राजा देवीबख्शसिंहने नासिरुद्दीन हैदरके

साथ सात दिनतक संग्रामकर उसे पराजित किया। इस प्रकार

जन्मभूमिपर हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका बार-बार कब्जा होता

रहा।सन् १८५७ ई०के प्रथम स्वतंत्रता संग्राममें मीर अली तथा रामशरणदासने मिलकर शांतिपूर्वक जन्मभूमि हिन्दुओंको

सौंपनेका प्रयत्न किया। किंतु अंग्रेजोंकी 'फूट डालो 'नीतिने

इसे सफल नहीं होने दिया। अंग्रेजी शासनकालमें १९१२-

१३में हिन्दुओंने दो बार आक्रमण किये, किंतु सफल नहीं रहे।

जन्मभूमिका ताला खुला तथा हिन्दुओंको पूजन और

दर्शनकी अनुमति मिली। वहाँ राम चबूतरा बना और

१ फरवरी १९८६को न्यायालयके आदेशसे श्रीराम-

रामलला, निर्मोही अखाड़ा और मुस्लिम पक्ष-तीनोंको बराबर-बराबर भूमि दे दी, परंतु मुस्लिम पक्षको यह

फैसला रास नहीं आया और उन्होंने सुप्रीम कोर्टमें अपील

की। सुप्रीम कोर्टने ९ नवम्बर २०१९ को फैसला सुनाया,

जिसके अनुसार सम्पूर्ण भूमि रामलला विराजमानको दे दी

हमानिअविक्रिस्टिशित्र डाह्मरहामासिडिशी वेडेरे:gक्किंब haर्गार्कि: 'बिलासिस WITH LOVE BY Avinash/Sha

मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कठोपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोडे, मनको परमात्माकी ओर बढ़ता रहता है। इन्द्रियाँ तथा मन

लगाम, बुद्धिको सारथि, इन्द्रियोंके विषयोंको रथके यदि साधकके अपने वशमें हों और साधक उन्हें

चलनेका मार्ग और जीवात्माको रथी बतलाया गया भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही लगाये रखे तो इस प्रकार

है। परमात्मासे बिछुड़े हुए जीवात्माको इसी रथके उन इन्द्रियोंका विषयोंमें विचरण करना हानिकारक

द्वारा विषयोंके मार्गपर चलकर ही परमात्माके धाम-

संख्या ९]

अपने घर पहुँचना है। रथको घोड़े ही चलाते हैं,

परंतु घोड़े उच्छृंखल होकर उलटे मार्गपर भी जा

सकते हैं और सीधे परमात्माके मार्गपर भी चल सकते हैं। जिस रथका सारिथ विवेकयुक्त, अप्रमत्त, स्वामीका आज्ञाकारी, लक्ष्यपर स्थिर, बलवान्, रास्तेका

जानकार और घोड़ोंको लगामके सहारेसे अपने वशमें

रखकर—इच्छानुसार सन्मार्गपर चला सकता है, वह रथ अपने लक्ष्यपर पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिस

पुरुषकी बुद्धि विवेकसम्पन्न, जीवात्माको परमात्माके

साथ सबको साधन-मार्गपर ले चलनेवाली होती है, वह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरता हुआ



धाममें ले जानेके लिये तत्पर, परमात्मामें लगी हुई, मन-इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाली, सदा सावधानीके

होनेपर इसके सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

नहीं है, प्रत्युत लाभदायक है; क्योंकि ऐसा करके

वह परमात्माके समीप पहुँच जाता है। जबतक शरीर,

इन्द्रियाँ और मन हैं, तबतक उनको विषयोंसे सर्वथा

अलग कर देना सम्भव नहीं है, अतएव साधक उनमेंसे राग-द्वेषको हटाकर विशुद्ध बना ले और

फिर उनका यथायोग्य साधनरूप विषयसेवनमें उपयोग

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्त:करणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्त:करणकी प्रसन्नता

'परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला

यह है वशमें किये हुए मनसे राग-द्वेष-

(गीता २। ६४-६५)

करे। भगवान्ने कहा है—

रहित इन्द्रियोंके सद्विषयोंमें विचरण करनेका परिणाम! जिन मन-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रिय-सुखकी आशासे विषयोंका उपभोग करके दु:खोंको निमन्त्रण दिया

जाता है, उन्हीं मन-इन्द्रियोंसे उन्हें साधनमें लगाकर परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है; परंतु जिसकी

बुद्धि असावधान है, निर्बल है, इन्द्रियोंके तथा मनके अधीन है, प्रमत्त है, लक्ष्यशून्य है और परमात्माको भी—जैसे सत्-सारथिके द्वारा संचालित रथ मार्गपर

चलकर लक्ष्यकी ओर बढ़ता रहता है, वैसे ही-भूली हुई है; उसको यही शरीर-रथ विपरीत मार्गमें अग्रसर होकर वैसे ही सर्वथा पतनके गर्तमें गिरा लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है।' इसपर भगवान् कहते हैं— तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

देता है, अथवा किसी भयानक दुष्कर्मरूपी पत्थरोंसे भिड़ाकर मानव-जीवनको चूर-चूर कर डालता है,

जैसे असावधान और निर्बल सारथिके द्वारा लगामको प्रचण्ड बलवाले घोड़ोंके अधीन छोड़ देनेपर घोड़े उस रथको सारथि और रथीसहित गहरे गड्ढेमें डाल देते हैं, अथवा किसी दीवालसे टकराकर चकनाचूर कर डालते हैं।

विचार करनेपर यह पता लगता है कि इन्द्रियाँ

बुद्धिको भी बलपूर्वक खींचती रहती हैं। अत: उनको सदा-सर्वदा सावधानीसे मनके सहारेसे यानी मनको उनके साथ न जाने देकर वशमें रखनेका प्रयत्न करना

स्वाभाविक ही बहिर्मुखी हैं। वे नित्य-निरन्तर विषयोपभोगके

लोभमें पड़ी हुई विषयोंकी ओर दौड़ती और मन-

चाहिये। इन्द्रियाँ वशमें न होंगी और मन उनका साथ देने लगेगा तो वे बुद्धिको वैसे ही विचलित कर देंगी, जैसे जलमें पड़ी हुई नौकाको वायु डगमगा देती है।

भगवान्ने गीताजीमें यही कहा है-इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

(२।६७)

'क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर

बुद्धि स्थिर है।' जिस प्रकार चतुर और सुयोग्य केवट नावको भँवरसे तथा प्रबल जलधारामें बहनेसे बचाकर, खास करके, पालके सहारेसे वायुको अनुकूल बनाकर सावधानीसे डाँड्

खेता हुआ मार्गपर अग्रसर होता रहता है तो नाव सुरक्षित

अपने स्थानपर पहुँच जाती है। इसी प्रकार भ्रम-प्रमादादिसे

इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी

'इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ

रहित सुयोग्य एकनिष्ठ बुद्धि मन-इन्द्रियोंसे युक्त शरीर-रथको राग-द्वेषरूपी भँवर तथा कामनारूपी तीव्रधार जलके प्रवाहसे बचाकर सत्संगरूपी पालके सहारेसे भगवत्कृपारूप वायुको अनुकूल बनाकर आगे बढ़ता रहता है, तो वह स्रक्षित भगवानुके धाममें पहुँच जाता है। अतएव साधकको चाहिये कि वह अपनेको शरीर,

इन्द्रिय, मन, बुद्धिका स्वामी मानकर उनके वशमें न हो, बल्कि इन्द्रियोंको पतनकारक तथा अनावश्यक उनके मनमानी विषयोंमें जानेसे रोककर, उनमें रहे हुए राग-द्वेषसे उन्हें छुड़ाकर मनको वशमें करे और बुद्धिको एक परमात्मनिष्ठ निश्चयात्मिका बनाकर परमात्मामें स्थिर

कर दे। यथार्थत: ऐसा हो जानेपर तो मन-इन्द्रियोंके

द्वारा होनेवाले सभी कार्य सहज ही भगवत्-कार्य बन

ही जायँगे। परंतु इसके पहले साधनकालमें भी इस आदर्शके अनुसार साधन करनेसे चित्तकी प्रसन्नता— निर्मलता प्राप्त हो जाती है और उसके द्वारा भगवत्प्राप्तिका

मार्ग सुलभ और प्रशस्त हो जाता है। अत: साधकका कर्तव्य है कि वह इस प्रकार साधन करके मानव-जीवनके परम लक्ष्य परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप

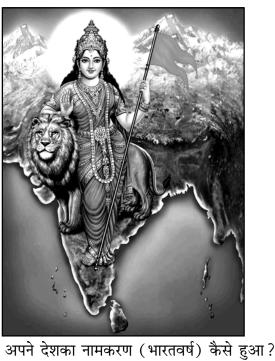
परमात्माको प्राप्त करे।

संख्या ९]

देशका नामकरण (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

देशका नामकरण

(पण्डित श्रीजानकीनाथजी शम



वस्तुत: इसमें तिनक भी विवादका अवकाश नहीं है। स्वायम्भुव मनुसे ही मानवी सृष्टि प्रारम्भ हुई— स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनुपा॥

इनके किनष्ठ पुत्र थे प्रियव्रत। उन्होंने रातमें भी प्रकाश रखनेकी इच्छासे ज्योतिर्मय रथद्वारा सात बार वसुधातलकी परिक्रमा की। इससे जो परिखाएँ बनीं, वे

ही सप्तिसन्धु हुए। फिर उनके अन्तर्वर्ती क्षेत्र सात महाद्वीप हुए। ये क्रमसे पूर्व-पूर्वके द्विगुणित परिमाणके हैं। ये जम्बू, प्लक्ष, शाल्मिल, कुश, क्रौंच, शाक तथा

ह। य जम्बू, प्लक्ष, शाल्माल, कुश, क्राच, शाक तथा पुष्कर नामसे प्रसिद्ध हैं तथा क्रमश: क्षारोद, इक्षुरस आदिसे घिरे हैं। परिमाणको देखते तथा क्षार समुद्रसे ही

आदिसे घिरे हैं। परिमाणको देखते तथा क्षार समुद्रसे ही आवेष्टित होनेके कारण आजका पूर्ण भूगोल जम्बूद्वीप ही है। प्रियव्रत के दस* पुत्रोंमेंसे कवि, सवन और

महावीर—इन तीनके विरक्त हो जानेके कारण शेष सात

इन सात द्वीपोंके अधिपति हुए। इनमेंसे आग्नीध्र जम्बूद्वीपके, इध्मजिह्व प्लक्षके, यज्ञबाहु शाल्मलिद्वीपके, हिरण्यरेता कुशद्वीपके, घृतपृष्ठ क्रौंचद्वीपके, मेधातिथि शाकद्वीपके

देवीभागवत ८।४।१—२८; श्रीमद्भा० ५।१।३३; मार्कण्डेयपुराण ५३।१५—१९; वायुपुराण ३३।३—७;

४०; शिवपुराण, ज्ञानसंहिता ४७; स्कन्दमहापुराण-माहेश्वरखण्ड, कुमारिका-खण्ड अ० ३१) जम्बूद्वीपाधिपति आग्नीध्रके नौ पुत्र हुए। ये थे

नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल। सम विभागके लिये जम्बूद्वीपको नौ भागोंमें बाँट दिया गया और इनके नामपर ही तत्तद्विभागोंके नामकरण हुए— 'आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बुद्वीपवर्षाणि बुभुजुः।'

(श्रीमद्भा॰ ५।२।२१, मार्कण्डेयपुराण ५३।३१—३५, वायुपुराण ३३। ब्रह्माण्ड, कूर्मपुराण आदिके उपर्युक्त स्थल) आठ वर्षोंके नाम तो किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष आदि

ही पड़े, किंतु ज्येष्ठ पुत्रका भाग 'नाभि' से अजनाभ हुआ। नाभिके एक ही पुत्र ऋषभदेव थे, जिनकी गणना भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंमें की जाती है, वे जैनधर्मके आदि तीर्थंकर भी माने जाते हैं। ऋषभदेवके एक सौ पुत्र हुए, जिनमें गुणोंमें श्रेष्ठ

'अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।'

(श्रीमद्भा॰ ५।७।३)

अर्थात् इस वर्षको, जिसका नाम पहले अजनाभवर्ष

तथा ज्येष्ठ थे भरत। उनकी अत्यन्त लोकप्रियता

'भारतवर्ष' चल पड़ा। इस सम्बन्धमें निम्न प्रमाण हैं—

सद्गुणशालिताके कारण 'अजनाभवर्ष' से

वराहपुराण अ० ७४; कूर्मपुराण अ० ८, अ० ४०। ३०-

था, राजा भरतके समयसे ही भारतवर्ष कहते हैं।

'भरतो ज्येष्ठः श्लेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं
भारतिमिति व्यपिदशन्ति।' (श्लीमद्भा० ५।४।९)

अर्थात् उनमें भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्हींके नामसे लोग इस अजनाभखण्डको भारतवर्ष कहने लगे।

* प्रियव्रतकी तीन स्त्रियाँ थीं। ये दस पुत्र विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मती नामकी स्त्रीसे थे।

िभाग ९४ 'तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः। ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्॥' पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्।।(नारसिंहपुराण ३०।७) अर्थात् ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वारा (श्रीमद्भा० ११।२।१७) अर्थात् उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। वे चिरकालतक धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका भगवान् नारायणके परम प्रेमी भक्त थे। उन्हींके नामसे नाम भारतवर्ष पडा। यह भूमिखण्ड, जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपति:। 'भारतवर्ष' कहलाया। आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते॥ ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः। (बृहन्नारदीयपुराण पूर्वभाग ४८।५) मुनिश्रेष्ठ ! प्राचीन कालमें भरत नामसे प्रसिद्ध एक ततश्च भारतं वर्ष मेतल्लोकेषु गीयते॥ राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके (विष्णुपुराण २।१।२८, ३२) अर्थात् ऋषभजीसे भरतका जन्म हुआ, जो उनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं। सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। तबसे यह (हिमवर्ष) इस ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः। लोकमें भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भरताय यः पित्रा दत्ता प्रातिष्ठता वनम्। 'हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्। ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते। (कूर्मपुराण, ब्राह्मीसंहिता पूर्व० ४०।४१) इत्यादि तस्मात्तद्(तु)भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥' (वायुपुराण ३३।५२, ब्रह्माण्डपुराण २।१४।६२) दुष्यन्तपुत्र भरतके नामपर देशका नामकरण भारत अर्थात् [ऋषभजीने] दक्षिणकी ओर स्थित 'हिमवर्ष' हुआ, यह परवर्ती मत है। दुष्यन्तपुत्र भरत तो ६ मन्वन्तर भरतको सौंप दिया। तभीसे बुधजन भरतके नामसे इस और ४२६ दिव्य युगोंके बाद हुए। इसके अनन्त वर्ष पूर्व वर्षको भारतवर्ष कहने लगे। ही देशका नाम 'भारत' हो चुका था। हाँ, उनके नामपर 'ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्। क्षत्रियोंकी एक शाखा भरतवंशी अवश्य ख्यात हुई, भरताद् भारतं वर्षं भरतात् सुमितस्त्वभूत्॥' जिससे अर्जुन आदिको 'भारत' कहा गया है और यह (अग्निपुराण १०७।११-१२) वायुपुराणके तथा महाभारतके— अर्थात् [हिमवर्षके शासक नाभिके] मेरुदेवीसे भरताद् भारती कीर्तियेनेदं भारतं कुलम्। ऋषभदेव पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। ऋषभके पुत्र भरत हुए। अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः॥ भरतके नामसे भारतवर्ष प्रसिद्ध है। भरतसे सुमित हुए। (आदिपर्व ७४। १३१) अर्थात् [शकुन्तलापुत्र] भरतसे ही इस भूखण्डका 'ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद् वरः। हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ। नाम भारत (अथवा भूमिका नाम भारती) हुआ। उन्हींसे यह कौरववंश भारतवंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनके तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः। बाद उस कुलमें पहले तथा आज भी जो राजा हो गये (मार्कण्डेयपुराण ५३।३९-४१) हैं, वे भारत (भरतवंशी) कहे जाते हैं। अर्थात् ऋषभसे भरतका जन्म हुआ था, जो कि वीर और अपने सौ भाइयोंमें सबसे श्रेष्ठ —से स्पष्ट है। 'भारताः' शब्द बहुवचन है, थे। पिताने दक्षिणकी ओरका वर्ष, जिसका नाम अतएव बहुतसे मनुष्योंका वाचक है। कुल तो स्पष्ट है हिमालयके नामपर पड़ा था, भरतको दे दिया। इन्हीं ही। अभिज्ञानशाकुन्तल या अन्य ग्रन्थमें भी शकुन्तलापुत्रपर महापुरुष भरतके नामपर उस वर्षका नाम भारतवर्ष देशका नामकरण होनेकी बात नहीं आयी। अतएव रक्मinख्यांsm Discord Server https://dsc.gg/dhaक़्फ़॔॔॔ॿॗचा **ग्ला**Aक्क्ऋंश्लि**गिट**े∛E BY Avinash/Sha

भगवान्का मंगल विधान [सत्य घटना] (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) बाबूजी अभी बम्बईसे आये हैं, वे सबेरे ही रंगून चले [8] पुरानी बात है—कलकत्तेमें सर कैलासचन्द्र वस् जायँगे, उन्होंने यह अंजीरकी टोकरी भेजी है, वे बम्बईसे लाये हैं। मुझसे कहा है कि मैं सबेरे चला जाऊँगा-प्रसिद्ध डॉक्टर हो गये हैं। उनकी माता बीमार थीं। एक दिन श्रीवसु महोदयने देखा—माताकी बीमारी बढ़ गयी है, कब अभी अंजीर दे आओ। इसीलिये मैं अभी लेकर आ गया। कष्टके लिये क्षमा कीजियेगा।'

भगवानुका मंगल विधान

प्राण चले जायँ, कुछ पता नहीं। रात्रिका समय था। कैलास बाबूने बडी नम्रताके साथ माताजीसे पूछा—'माँ, तुम्हारे मनमें किसी चीजकी इच्छा हो तो बताओ, मैं उसे पूरी कर दूँ।'माता कुछ देर चुप रहकर बोलीं—'बेटा! उस दिन मैंने

बम्बईके अंजीर खाये थे।मेरी इच्छा है अंजीर मिल जायँ तो में खा लूँ। ' उन दिनों कलकत्तेके बाजारमें हरे अंजीर नहीं मिलते थे। बम्बईसे मँगानेमें समय अपेक्षित था। हवाई

संख्या ९]

जहाज थे नहीं। रेलके मार्गसे भी आजकलकी अपेक्षा अधिक समय लगता था। कैलास बाबू बडे दुखी हो गये— माँने अन्तिम समयमें एक चीज माँगी और मैं माँकी उस माँगको पूरी नहीं कर सका, इससे बढ़कर मेरे लिये दु:खकी बात और क्या होगी? पर कुछ भी उपाय नहीं सूझा। रुपयोंसे मिलनेवाली चीज होती तो कोई बात नहीं थी। कलकत्ते या बंगालमें कहीं अंजीर होते नहीं, बाजारमें मिलते नहीं। बम्बईसे आनेमें तीन दिन लगते हैं। टेलीफोन भी नहीं, जो सूचना दे दें। तबतक पता नहीं—माताजी जीवित रहें या नहीं, अथवा जीवित भी रहें तो खा सकें या नहीं। कैलास बाबू निराश होकर पड गये और मन-ही-मन

रोते हुए कहने लगे—'हे भगवन्! क्या मैं इतना अभागा हूँ कि माँकी अन्तिम चाहको पूरी होते नहीं देखूँगा।' रातके लगभग ग्यारह बजे किसीने दरवाजा खोलनेके लिये बाहरसे आवाज दी। डॉक्टर वसुने समझा, किसी रोगीके यहाँसे बुलावा आया होगा। उनका चित्त बहुत खिन्न था। उन्होंने कह दिया—'इस समय मैं नहीं जा सकुँगा।' बाहर खडे आदमीने कहा—'मैं बुलाने नहीं आया हूँ, एक चीज लेकर आया हूँ—दरवाजा खोलिये।'

दरवाजा खोला गया। सुन्दर टोकरी हाथमें लिये एक दरवानने भीतर आकर कहा—'डॉक्टर साहब! हमारे

सकती है।—ह० प्र०

बात यह थी, एक गुजराती सज्जन, जिनका फार्म कलकत्ते और रंगूनमें भी था, डॉक्टर कैलास बाबूके बड़े प्रेमी थे। वे जब-जब बम्बईसे आते, तब अंजीर लाया करते थे। भगवान्के मंगल विधानका आश्चर्य देखिये, कैलास बाबूकी मरणासन्न माता आज रातको अंजीर चाहती है और उसकी चाहको पूर्ण करनेकी व्यवस्था बम्बईमें चार दिन पहले ही हो जाती है और ठीक समयपर अंजीर कलकत्ते उनके पास आ पहुँचते हैं। एक दिन पीछे भी नहीं, पहले भी नहीं।*

कैलास बाबू अंजीरका नाम सुनते ही उछल पड़े।

उन्हें उस समय कितना और कैसा अभूतपूर्व आनन्द

हुआ, इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। उनकी आँखोंमें हर्षके आँसू आ गये, शरीरमें आनन्दसे रोमांच

हो आया। अंजीरकी टोकरीको लेकर वे माताजीके पास

पहुँचे और बोले—'माँ! लो—भगवान्ने अंजीर तुम्हारे

लिये भेजे हैं।' उस समय माताका प्रसन्नमुख देखकर कैलास बाबू इतने प्रसन्न हुए, मानो उन्हें जीवनका परम

दुर्लभ महान् फल प्राप्त हो गया हो।

पुरानी बात है। स्वर्गीय भाई कृष्णकान्तजी मालवीय नैनी जेलमें थे, उनको बस्ती स्थानान्तरित किया गया। श्रीकृष्णकान्तजी मुझे अपना भाई मानते थे। उनकी मेरे प्रति

दिनों सन्ध्याको लगभग पाँच बजे ट्रेन पहुँचती थी। तार

[२]

अकृत्रिम प्रीति तथा परम आत्मीयता थी। इससे उन्होंने गीताप्रेसके पतेसे मेरे नाम तार दिया कि 'हमलोग कई आदमी रेलसे गोरखपुर होकर बस्ती जा रहे हैं—गोरखपुर स्टेशनपर भोजनकी व्यवस्था कीजिये।' गोरखपुरमें उन

* डॉ० श्रीकैलासचन्द्र महोदयने यह घटना स्वयं मुझे सुनायी थी। बहुत दिनोंकी बात होनेसे लिखनेमें कहीं कुछ साधारण गलती भी रह

िभाग ९४ गीताप्रेसमें आया। उन लोगोंने कुछ भी व्यवस्था न करके आदमी थे। सबने भरपेट भोजन किया। मेरा आदमी लौटकर

मैं प्रेससे लगभग साढ़े तीन मील दूर ऐसी जगह रहता था, जहाँ उन दिनों इक्के, ताँगे कुछ भी नहीं मिलते थे। न मोटर

तार मेरे पास एक साइकिलवाले आदमीके हाथ भेज दिया,

थी, न टेलीफोन। वह आदमी लगभग पौने पाँच बजे मेरे पास पहुँचा। घरमें भोजनका सामान भी बनाया तैयार नहीं

था। प्रेसके लोगोंपर मुझे झुँझलाहट हुई कि उन्होंने व्यवस्था न करके तार मेरे पास क्यों भेज दिया। स्टेशन यहाँसे तीन

मील दूर है, सवारी पास नहीं, सामान तैयार नहीं। कुल १५-

२० मिनटका समय ट्रेन आनेमें है। मेरे मनमें बड़ा खेद था— 'भाई कृष्णकान्तजीको भोजन नहीं मिलेगा, वे क्या समझेंगे।'—मैने भगवान्को स्मरण किया।

इतनेमें देखता हूँ तो दो इक्के आकर बगीचेमें खड़े हो गये। साथमें एक सज्जन थे। उन्होंने कहा, 'बाबू

बालमुकुन्दजीके यहाँ प्रसाद था। उन्होंने आपके लिये भेजा है।' मैं जिस बगीचेमें रहता था, वह उन्हींका था, वे मेरे प्रति बड़ा स्नेह रखते थे। मैंने देखा—कई तरहकी मिठाई, पूरी,

नमकीन, साग, अचार, सूखा मेवा, फल पर्याप्त मात्रामें हैं।

मेरी प्रसन्नताका पार नहीं। मैंने मन-ही-मन कहा— भगवान्ने कैसी सुनी। उन्हीं इक्कोंको पूरे सामानसहित एक आदमी साथ देकर मैंने स्टेशन भेज दिया—कह दिया—जल्दी ले

जाना, कहीं गाड़ी छूट न जाय। गाड़ी दस-पन्द्रह मिनट लेट आयी। सामान पहुँच गया। वे लोग एक दर्जनसे ज्यादा

इतने लोग तृप्त हो गये। मुझे तो पता भी नहीं था कि कितने आदमी खानेवाले हैं। इक्के भी साथ आ गये—जिससे सामान स्टेशनपर भेजा जा सका। ठीक समयपर सामान

पहुँचा। एक घंटे बाद पहुँचता, तब भी इस काममें नहीं आता और दो-एक घंटे पहले पहुँच गया होता तो उसे दूसरे काममें ले लिया जाता, इस कामके लिये नहीं बचता।

इससे सिद्ध होता है कि कोई ऐसी सदा जाग्रत् रहकर व्यवस्था करनेवाली अचिन्त्य महान् शक्ति है, जो आगे-से-आगे यथायोग्य व्यवस्था करती रहती है—और वही शक्ति जगत्का संचालन करती है। उसके मंगल विधानके अनुसार सब कार्य सुव्यवस्थितरूपसे होते रहते

आया। तबतक मुझे चिन्ता रहीं, कहीं गाड़ी छूट तो नहीं

गयी होगी। आदमीने लौटकर सब समाचार सुनाया तो मेरे

हृदयमें भगवान्के मंगल विधानके प्रति महान् विश्वास हो

गया। कैसा सुन्दर विधान है ? मुझे जरूरत पौने पाँच बजे हुई, तार अभी मिला। परंतु उस जरूरतको पूरी करनेकी

तैयारी कहीं बहुत पहले हो गयी और ठीक जरूरतके

समयपर सामान पहुँच गया। सामान भी इतना कि जिससे

हैं। जो स्थिति अब सामने आती है, उसकी तैयारी बहुत

पहले हो जाती है। मनुष्य उस परम शक्तिपर विश्वास करे, निश्चिन्त रह सके तो भगवान्की सेवाके भावसे सब कार्य करता हुआ भी वह सदा सुखी रह सकता है।

प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय

कुछ भी मिलता - कोर्ति-अकोर्ति, है मान-अपमान। * શુभાશુभ, * सुख-दु:ख, धन-दारिद्र्य, प्रिय-अप्रिय, लाभ-नुकसान॥ * आरोग्य-रोग, निश्चित * जन्म-मृत्यु, ही हितपूर्ण विधान। सब * * सुहृद-शिरोमणि मंगलहेतु रचते ज्ञानमय श्रीभगवान्॥ * विश्वासी अति भक्त नित्य संतुष्ट बना रहता यह जान। * * स्थितिमें पाता मंगलमय प्रभुका संस्पर्श वह महान॥ * * हर्ष-विषादरहित वह परम आनन्द-निमग्न। रहता सदा * * चित्त-बुद्धि प्रभुमें सब रहते उनके नित्य संलग्न॥ सतत * * प्रभुका अतिशय प्रिय दिव्य वह होता, परम समता-सम्पन्न। * * होता उसके उरमें प्रभुका नित्य नवीन प्रेम * * उत्पन्न॥ * प्रभुमें होती उसकी अनन्य * एकमात्र एकान्त। दुर्लभ फिर जीवन जाता उसका परम भागवत शान्त॥

मरणोपरान्तकी क्रिया संख्या ९] मरणोपरान्तकी क्रिया (श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) जो यह मानता है कि यह शरीर ही आत्मा नहीं उसको मिलता ही है। है, बल्कि जीवात्मा शरीरसे भिन्न है। उसके लिये जब जिससे दूसरोंको सुख-शान्ति हो, उसे 'पुण्य' एक जीवात्मा शरीर छोड़कर जाता है, तब उस कहते हैं और जिससे दूसरोंको दु:ख तथा अशान्ति हो, उसका नाम 'पाप' है। जीवात्माकी दो गतियाँ होती हैं-मुक्ति या दूसरे देहकी मरनेवाले मनुष्यके पीछे कोई भी उपस्थित अधिकारी, प्राप्ति । शास्त्रकी बात अलग रखें तो भी शरीर और उसमें जीवके सुख, शान्ति तथा आनन्दके लिये जो कुछ करता रहनेवाला जीवात्मा पृथक् है—ऐसा युक्तिसे भी मानना है, मरनेवाला प्राणी उसके पुण्यफलका भागी होता है। पड़ता है। शरीर ही जीवात्मा होता तो मृत्युको प्राप्त उस कार्यमें करनेवाले व्यक्तिकी पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये। होनेपर शरीरका वह मुर्दा पड़ा ही रहता है, फिर भी सब मरनेवालेके पीछे होनेवाली क्रियाका मुख्य आधार कहते हैं कि मनुष्य मर गया। शरीर और शरीरमें श्रद्धा है। श्रद्धा ही उसमें फलवती होती है। मनीआर्डर रहनेवाला दोनों अलग-अलग हैं। भेजनेवालेके पास रुपये पहुँचनेकी पहुँच आती है। शरीरको छोड़कर जानेवाला जीव यदि मुक्त हो मरनेवालेके पास क्रियाका फल पहुँचनेकी पहुँच नहीं गया हो तो उसके पीछेसे उसके लिये जो क्रिया की आती। यदि ईश्वरमें श्रद्धा है, उसको सर्वत्र व्यापक, जाती है, उससे न तो उसको लाभ होता है तथा न हानि सबका नियन्ता और सर्वशक्तिमान् मानते हो तो मरनेवालेके ही होती है। शरीर छोड़कर गये हुए जीवने मुक्ति पायी पीछे उसके निमित्त की गयी क्रियाका फल उसको या दुसरा शरीर धारण किया, इसका निश्चय साधारण मिलेगा, यह अवश्य मानना चाहिये। मनुष्य नहीं कर सकता। इसलिये मरनेवालेके पीछे उसके परदेशमें बसे हुए पुत्रको देनेके लिये हम एक कल्याणके लिये उसके सगे-सम्बन्धी जो कुछ क्रिया किताब वहाँ जानेवाले किसी सज्जनके हाथ श्रद्धापूर्वक करते हैं, उससे मरनेवालेको लाभ ही होता है। देते हैं और मानते हैं कि 'वह दे देगा; क्योंकि वह गुणी है।' परमात्मा उसकी अपेक्षा अनेकगुना अधिक गुण जैसे विभिन्न डाकघरोंमें काम करनेवाले विभिन्न मनुष्योंके रहनेपर भी जिम्मेवारी एक आदमीकी होती और शक्तिसे युक्त है, वह सबकी विशेष श्रद्धाका पात्र है या सर्व-सामान्यकी होती है, उसी प्रकार जगत्में है। उसको हम श्रद्धापूर्वक जो कुछ देंगे, उसे वह जरूर विविध प्राणियोंके कार्यकी जवाबदेही एक परमात्मापर उस जीवके पास पहुँचा देगा। यह प्रयोग श्रद्धाका है, होती है या सर्वसामान्यकी होती है। जो सबमें व्याप्त, इसी कारण इसको 'श्राद्ध' कहते हैं। सब स्थलोंमें व्यापक, सर्वशक्तिमान्, अनादि, अनन्त, श्राद्ध पैसोंसे ही हो, ऐसी बात नहीं है, जिसके सर्वत्र सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला, सर्वेश्वर, सबका नियन्ता पास पैसे हों, वह पैसोंसे अनेक प्रकार दान करे। है—वही परमात्मा है। जैसे मनुष्य चाहे जिस देशका— विधिपूर्वक करे। धन न हो तो शुद्ध विचारसे परमात्माकी गाँवका निवासी हो, उस गाँवके पोस्ट ऑफिसमें भक्तिपूर्वक प्रार्थनाके द्वारा करे। डाकसे मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजनेपर उसको वहाँसे वे डाकमें तो मनीआर्डरके रुपये तथा उनके डाकमहसूल रुपये मिलेंगे ही। इसी प्रकार मरनेवाला प्राणी चाहे दिये बिना रुपये नहीं भेजे जाते, पर परमात्मा तो जहाँ हो और चाहे जिस योनिमें हो, उसके निमित्त दीनदयालु हैं; जिसके पास धन नहीं होता, वस्तु नहीं जो सुकृत्य परमात्माके विधानद्वारा किया जाता है, वह होती और वह मनुष्य यदि परमात्मासे इतना ही कह देता

भाग ९४ है कि 'हे प्रभो! हमारे अमुक सम्बन्धीका जिसमें परमात्माको समर्पण किया गया हो तो उसके फलदाता कल्याण हो, वही करो' अथवा 'वह जिस योनिमें हो, भगवान् होते हैं। एक ही क्रिया और उतना ही व्यय, वहाँ उसको सुख, सम्पत्ति और शान्ति मिले' तो ऐसी फिर भावके भेदसे फलमें बड़ा भेद होता है। इसलिये प्रार्थना करनेसे भी प्रभु उस जीवको वह वस्तु प्रदान मृतकके पीछे जो कुछ भी किया जाय, सब ईश्वरार्पण करते हैं। ऐसा करनेवालेमें भक्ति, श्रद्धा अवश्य होनी कर दे। इसी आधारपर भगवान्ने गीतामें कहा है कि जो चाहिये। कुछ खाये, जो होम करे, जो दान दे, जो तप करे, जो श्रद्धासे होनेवाले इस श्राद्धमें, जिसका प्रसंग कुछ भी करे—सब मुझको अर्पण करे। इसीलिये श्राद्धमें शास्त्रमें है, बहुत विशाल दृष्टि है। एक मृतकके लिये ईश्वरार्पण और श्रद्धा-बुद्धिकी अतिशय आवश्यकता है। श्राद्धक्रिया करते समय उस क्रियामें इस प्रकारके संकल्प उन दोनोंके बिना जो श्राद्ध होता है तथा देखा-देखी, आते हैं कि 'हे प्रभो! प्राणिमात्र, देव, ऋषि, पश्-पक्षी लोकलाजसे, लोकमें यशके लिये, बिना समझे होता है, सारे जीव तृप्त हों, सभी सुखका अनुभव करें।' उसका फल कर्ताकी इच्छा और पुरुषार्थके अनुसार ही मरनेवालेके पीछे होनेवाली क्रियामें इतर जीव गौण होता है। जिसको दान देना हो, जिसको भोजन कराना हैं और मृतक प्राणी मुख्य है। इसलिये मरनेवालेके पीछे हो, जिसको तृप्त करना हो, उसको श्रद्धा और पूर्णभावके विधि और श्रद्धापूर्वक शुभ विचारयुक्त परमेश्वरप्रीत्यर्थ साथ आदर-सत्कारसे सन्तुष्ट करे। प्राणीकी अन्तरात्मा जो कुछ दान, पुण्य, तर्पण आदि किया जाता है, वह तृप्त होती है, तभी परमात्मा तृप्त होते हैं। मृतक प्राणीको अवश्य मिलता है। इसीसे शास्त्रमें बार-बार पुकारकर कहा गया है इसपर कुछ लोग कहते हैं कि तालाबसे बाहर कि श्राद्धमें बहुत आदिमयोंको भोजन न कराये, सगे-डालनेपर पानी जैसे दूर खेतमें संकल्प करनेपर भी नहीं सम्बन्धीको, वैद्य-ज्योतिषीको, अपना उपकार करनेवालेको, पहुँचता, उसी प्रकार यहाँ किया हुआ शुभ कर्म कोसों बदला चुकानेवालेको भोजन न कराये। जो भक्त हो, दूर जीवको कैसे मिलेगा? यह दलील वितण्डावादकी जिसकी परमात्मामें प्रीति और भक्ति हो, उसको सन्तुष्ट है। जैसे घरमें बैठे मनुष्यकी बात उसका पड़ोसी नहीं करे। सुन सकता, पर वही बात टेलीफोनके द्वारा की जाय तो ऐसे ब्राह्मण न मिलें तो क्या क्रिया ही न करे? दूर-अतिदूरका मनुष्य भी सुनता है, उसी प्रकार यहाँ की नहीं, क्रिया अवश्य करे। भगवान्ने ही इसका निर्णय कर जानेवाली क्रिया परमात्माके विधानद्वारा होनेपर अवश्य दिया है कि जो प्राप्त हों, उन्हींमें अच्छे निर्दोष देखकर, फल देती है। सर्वांगपूर्ण न हो तो भी उसमें ईश्वरार्पणबुद्धि करे। ऐसा डाकघरमें काम करनेवाले कर्मचारीको हम करनेपर फिर पात्र-अपात्रका प्रश्न नहीं रहता। चेतन-व्यक्तिगतरूपसे रुपये देते हैं तो उसका उत्तरदाता वह दृष्टि करे, शरीर-दृष्टि न करे। मन्दिरमें बैठकर देवताको मनुष्य होता है, डाकविभाग नहीं; परंतु यदि उसी नमस्कार करनेवाला देवताको ही देखता है। मन्दिर और कर्मचारीको डाकद्वारा भेजनेके लिये रुपये दिये हों और पुजारीपर दृष्टि नहीं रखता। इसी प्रकार प्राणिमात्रमें उसकी रसीद ले ली हो तो उन रुपयोंका उत्तरदाता रहनेवाले चेतन परमात्मापर दृष्टि रखकर मृतकके नामपर डाकविभाग है। उसी प्रकार यहाँ दिया हुआ प्रत्येक दान शुभ कर्मरूपी श्राद्ध करे तो वह अवश्य फलदायी है। या कोई भी शुभ कर्म इस जगत्के मनुष्यको ही अर्पण कुछ नहीं तो, मनुष्यको तर्पण अवश्य करना किया हो तो इस जगत्का मनुष्य ही उसका बदला देता चाहिये। इस तर्पणकी युक्ति श्रेष्ठ और बहुत सुन्दर है। है,Hinduisnहेत्रिं।इहे,जावेतुर्वक्षि व्यक्तिः tags: अंबंधें caggylatha um सुमें। मुश्चिरिक्तु रूप एती चिस्तुरे, विविधिदर्श inpast अस्ति।

संख्या ९] मरणोपरान्	नकी क्रिया १५
<u> </u>	*********************************
है तृप्त होनेके लिये। भोजन, वस्त्र, स्त्री, पुत्र, परिवार,	हिरण्यकशिपुको प्रह्लादने तार दिया था। जैसे डूबते
सभी जीवकी तृप्तिके लिये है। इस तर्पण-विधिमें तृप्त	बालकको उस्ताद तैराक स्वयं तैरकर तार सकता है,
करनेकी विधि है। मृतक तृप्त हो, यह भावना है। तर्पण	उसी प्रकार पिताको पुत्र तार सकता है। जैसे गंगाके
करनेवालेको अपने चित्तसे यह संकल्प करना चाहिये	प्रबल प्रवाहको नहरवाले मजबूत बाँध बाँधकर फेर
और इस संकल्पसे इस प्रकार अवश्य होगा, यह मान	सकते हैं; उसी प्रकार पुत्र प्रबल शुभ कर्म या पुरुषार्थसे
लेना चाहिये। अन्त:करणका संकल्प शुद्ध और सच्चे	पिताकी सद्गति कर सकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने
भावका होता है तो वह अवश्य फल देता है।	सम्बन्धीकी शुभ गति कर सकता है।
जादूगरका संकल्प कंकड़को रुपया दिखलानेका	यह क्रिया उसे अपनेको संकटमें डालकर, कर्ज
होता है और वह फलता है। हिप्नाटिज्मवाला मोमबत्तीको	लेकर, जायदाद बेचकर नहीं करनी चाहिये। संसारमें
केला बनाकर दिखलाता है और खिलाता है, वह भी	कीर्ति कमानेके लिये भी नहीं करनी चाहिये। कुछ भी
फलता है। तो फिर शुद्धभावसे मृतकके लिये किया हुआ	साधन न हो तो संकल्पमात्र ही किया करे, इसका भी
शुभ संकल्प क्या नहीं फलेगा? संकल्पमें बल है।	फल होता है।
अहमदशाह बादशाहके कालमें अहमदाबादका	जैसे वादी एक-दो और साढ़े तीन कहकर
किला बन रहा था। वहाँ अहमदाबादमें माणिक नामका	वस्तु निकालता है। उसमें जैसे एक-दो और साढ़े
एक साधु रहता था। किला दिनमें बनता और रातमें गिर	तीन कोई वस्तु नहीं निकलती। इन शब्दोंके कहते
जाता। माणिक साधु दिनमें गुदड़ीमें टाँके लगाता और	समय वह जो चाहता है, वही वस्तु निकलती है।
रात पड़ते ही उन टाँकेको कट-कट तोड़ डालता। बस,	वही वादी यदि ये शब्द नहीं बोलता है तो भी वस्तु
उसी क्षण किला धड़ाधड़ गिरने लगता। बादशाहने पता	निकलती है। उसी प्रकार श्राद्धमें संकल्प मुख्य विचार
लगाया तो मालूम हुआ कि किलेके गिरनेमें कारण	है। तथापि तर्पण आदि क्रिया उसमें आवश्यक वस्तुएँ
माणिक साधु है। बादशाहने उसको मनाया और कहा	हैं। कुश क्यों, तर्पण क्यों, भातका पिण्ड क्यों—इन
कि मैं तुम्हारा नाम रखूँगा। यह चौक माणिकचौक	सारे तर्कोंको समझानेके लिये बहुत विस्तार करना
कहलायेगा। तुम किला बनने दो।	पड़ेगा। पाठक इतना ही समझ लें कि जिस समय
चित्तके संकल्पमें अतिशय बल है। वासनाओंके	यह क्रिया व्यवहारमें आयी, उस समय शास्त्र बहुत
कारण यह चित्तका बल नष्ट हो जाता है। चित्तकी	उच्च कोटिपर था। इसलिये जिन-जिन वस्तुओंकी
वृत्तियोंको भोगोंसे हटाकर उसके बलको एकत्र किया	उसमें योजना की गयी है, वे खास जरूरी हैं।
जाय तो चित्तका संकल्प बहुत उपयोगी हो सकता है।	इसलिये यदि जिज्ञासु श्रद्धापूर्वक इनका अनुष्ठान करेगा,
जीते-जी मनुष्य अपने बाल-बच्चे और कुटुम्बके	तो उसको स्वयं फलकी अनुभूति होगी। इससे उसीको
मोहसे अपने धनको, जो पुण्यमें लगानेसे साथ जाता है,	यह दिखायी देगा कि उसकी क्रियासे मृतकको अवश्य
पुण्यकार्यमें खर्च नहीं कर सकता और सब छोड़कर मर	लाभ हुआ है।
जाता है। उस धनके मालिक बने हुए उसके पुत्र आदि	परंतु इस क्रियाको लोभी, मूर्ख, ढोंगी, धूर्त,
यदि उसमेंसे यथाशक्ति कुछ धन खर्च करके मृतकके	लालची, झूठे, दुराचारी तथा अभक्त ब्राह्मणके द्वारा न
भावी जन्ममें सहायता करते हैं, तो वे पुत्रादि निश्चय ही	कराये। हो सके तो अपने-आप करे, नहीं तो किसी
पितृ-ऋणसे मुक्ति पाते हैं। अशुभ कर्म करनेवाले	श्रद्धालु, भक्त, सत्यवादी ब्राह्मणके द्वारा कराये। किसी
पिताको शुभ कर्म करनेवाला उसका पुत्र तार सकता है।	पुराने इतिहासमें द्वादशाह या कोई बड़ा भोज किसी

मृतकके आदमीके पीछे किया गया हो, यह पता नहीं श्राद्धमें श्रद्धा, शास्त्रविधि और मनकी शान्त चलता। परंतु मृतकके पीछे श्राद्ध और तर्पण सबने किये स्थितिसे उत्पन्न होनेवाला संकल्प बहुत ही जरूरी है। हैं। ये ग्रामभोज आदि तो सब ख्यातिके लिये किये जाते मरनेके बाद होनेवाली सारी क्रियाको मुख्यत: 'श्राद्ध' हैं, इससे मृतकके कल्याणसे कोई सम्बन्ध नहीं है। शब्दसे शास्त्रोंने अभिहित किया है। जिसके हृदयमें मृतक पुरुषके हितका सच्चा भाव हो, श्राद्धके मन्त्रों और वाक्योंका अर्थ समझ लिया उसे तो शास्त्रके अनुसार विधिपूर्वक तर्पण-श्राद्ध करने जाय तो अच्छा है। इसलिये श्राद्ध करनेवालेको श्राद्ध चाहिये। करानेवालेसे वहाँ बोले जानेवाले मन्त्रोंका अर्थ जान शक्ति हो तो मृतकके लिये दान-पुण्य करे, यह लेना चाहिये। श्राद्ध कराते समय करानेवाला ब्राह्मण कोई बुरी बात नहीं है; परंतु वह सच्चा दान-पुण्य होना बारंबार पैसा न माँगे। कर्मके बीचमें पैसा माँगना चाहिये। भीतर जैसी भावना रहेगी, वैसा ही फल होगा। लोभमूलक है। कर्मसे अन्तमें श्रद्धालु पुरुष श्राद्ध भीतर कुछ भावना रखकर मुँहसे कुछ और ही बोले तो करानेवाले ब्राह्मणको यथाशक्ति दक्षिणासे अवश्य सन्तुष्ट उसको फल तो भीतरकी भावनाके अनुसार ही होगा। करे। परिश्रमका फल सभी चाहते हैं। श्रद्धासे जो कुछ मृतककी मरण-तिथिपर, जहाँतक हो सके, संक्षेपमें होता है, वह सब फलता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे जो श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त विधिसे दीन, दुखी, बालक, साधु, होता है, वह सब फलता है। अश्रद्धासे किये हुएका ब्राह्मणको अन्न-वस्त्र और जलसे सन्तुष्ट किया जाय फल न यहाँ होता है, और न परलोकमें ही होता है। तो वह लाभप्रद है। विस्तार करनेसे श्रद्धा टूटती है। कर्ममात्रके दो फल हैं-एक सामान्य फल, दूसरा विशेष फल। विशेष फल जैसी-जैसी तीव्र भावना होती इसलिये जहाँतक हो, संक्षेपमें करे। शास्त्रमें तो एक या दो ब्राह्मणोंके लिये कहा गया है। है, उसीके अनुसार होता है। जब शास्त्र पढ़ते हैं तो रोमांच हो जाता है। जीवित मनुष्य दूर होनेपर भी संकल्पके बलसे श्राद्धके शास्त्रकी भी यही बात है। शास्त्रानुसार श्राद्ध एक-दूसरेका हित-साधन कर सकते हैं। जैसे बेतारके करनेवाला अवश्य ही मृतकको तारता है। हिरण्यकशिपुको तारका स्टेशन एक-दूसरोंके आन्दोलनको ग्रहण करता मारकर नृसिंह भगवान् प्रह्लादसे कहते हैं कि 'हे पुत्र! है, उसी प्रकार सहृदयी, हितैषी, निष्पाप और परस्पर तुम अपने पिताकी मृत्युके पीछेकी सारी क्रिया करो।' हृदयसे हितकी चाहना करनेवाले सगे-सम्बन्धियोंका यादवोंने भी यादवस्थलीमें अपने सबके मरनेके बाद चित्त बेतार-के-तारका स्टेशन-जैसा है। उनके निर्मल और प्रेमी चित्त एक-दूसरेकी हितकामनाके विचारोंके उनकी क्रिया की थी। दशरथकी क्रिया श्रीरामने की। अनेकों कष्ट उठाकर जन्म देनेवाले, पालनेवाले, ज्ञान-आन्दोलनको ग्रहण करते हैं। संसारमें चित्त ही भोग शक्ति और भक्ति देनेवाले माता-पिताके पीछे मुफ्त और मोक्ष उत्पन्न करनेकी क्षेत्रभूमि है। चित्तमेंसे ही मिलनेवाले जलसे भी जो पुत्र तर्पण नहीं करता, तो सब कुछ उत्पन्न होता है। इसलिये प्रत्येक सगे-

सम्बन्धियोंको चाहिये कि अपने जीवित या मृतक

सगे-सम्बन्धी, हितैषी, शत्रु-मित्र, जगत्के जीवमात्रके लिये हृदयके निर्मल भावसे शुभ कामना करे। प्रतिदिन

सबका शुभ हो, ऐसी इच्छा निर्मल और निष्पाप

चित्तसे बारंबार जगत्को प्रदान करता रहे।

जान लो कि वह पुत्र या तो मूर्ख या अज्ञानी है

साथ रूढ़ि—रिवाजोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। बुरे

रिवाजोंके कारण शास्त्रविधि बुरी नहीं हो जाती।

मरणोपरान्त की जानेवाली इन शास्त्रोक्त क्रियाओं के

अथवा कुपुत्र है।

भाग ९४

संख्या ९] शरीरसे अलगावका अनुभव साधकोंके प्रति— शरीरसे अलगावका अनुभव (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) भगवान्ने मनुष्योंको कल्याणकी सामग्री बहुत दी होनेसे दो तरहका असर हुआ, पर आप तो वही रहे। है और उम्र भी बहुत ज्यादा दी है। मिनटोंमें—थोड़े नफा हुआ तो आप दूसरे थे क्या? नुकसान हुआ तब समयमें कल्याण हो जाय, उसके लिये वर्षोंकी बहुत उम्र आप दूसरे हो गये क्या? अगर आप एक नहीं रहते तो दी है। विचार-शक्ति भी बहुत दी है। सब सामग्री इतनी नफा-नुकसान दोनोंका ज्ञान किसको होता? आप तो दी है कि मनुष्य कई बार अपना कल्याण कर ले, जबकि सम ही रहते हैं, एक ही रहते हैं। आपपर असर पड़ा एक बार कल्याण होनेके बाद दूसरी बार कल्याण ही नहीं। असर पड़ता है, मन-बुद्धिपर। करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। बहुत विचित्र-शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—ये सब बदलनेवाले हैं। विचित्र सामग्री भगवान्ने मनुष्यको दी है। जैसे, एक यह इनपर यदि कोई असर पड़ गया तो क्या हो गया। ये सीधी बात है कि बचपनसे आजतक आपको यह पक्का बदल गयीं तो क्या हो गया। आप उसके असरसे ज्ञान है कि देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति अपनेको सुखी-दुखी मानते हो, यही गलती होती है। सब बदली है और मैं वहीं हूँ। मैं तो वही हूँ, पर शरीर इतनी बातपर दृढ़ रहो कि मैं वही हूँ। सुखके समयमें वैसा नहीं है, साथी वैसे नहीं हैं। जो बदले हैं, उनको जो था, वही दु:खके समय भी हूँ। अपने-आपमें स्थित छोड़ दें और जो नहीं बदला है, उसको पकड़ ले तो रहना ही 'स्वस्थ' होना है, अर्थात् 'स्व' में स्थित होना अभी बेडा पार है, अभी, अभी इसी क्षण। जो बदलता है। सुखी-दुखी होना प्रकृतिमें स्थित होना है। प्रकृतिमें स्थित होनेसे सुख-दु:खके भोगमें हेतु होना पड़ता है। है, वह मेरा स्वरूप नहीं है और जो नहीं बदलता है, वह मेरा स्वरूप है; बस, इतना ही काम है। क्यों ? इसलिये कि आप प्रकृतिमें स्थित हो जाते हैं अनेक परिस्थितियोंके बीच आप एक हैं। अनेक अर्थात् शरीर, इन्द्रियों, मन-बुद्धिपर जो असर होता है, घटनाओंके बीच आप एक हैं। अनेक देशोंमें घूम-फिर उसे आप अपनेपर असर होना मान लेते हैं। आप कर भी आप एक रहते हैं। बहुत समय बीतनेपर भी आप जानकर प्रकृतिमें स्थित होते हैं। आप उसमें स्थित हैं वही रहते हैं। सब कुछ बदलनेपर भी आप वही हैं। उस नहीं। आप न सुखमें हैं, न दु:खमें, न लाभमें हैं, न बदलनेवालेसे अपनेको आप अलग करके देखें, तो अभी हानिमें। न किसीके जन्ममें हैं, न किसीके मरणमें। आप मौज हो जाय। अपनेको अलग करके देखना तत्त्वज्ञान सदैव इन सबसे अलग हैं। आप जान-बुझकर अपनेको हो गया और बदलनेवालेको साथ मिलाकर देखना उसमें खींच लेते हैं और सुखी-दुखी हो जाते हैं और अज्ञान हो गया। कहते हैं कि 'साहब! बोध नहीं हुआ।' बोध करना साधन करनेवाले भाई-बहनोंके मनमें एक बात चाहते हो तो—जो आप वही रहते हैं, बस, इस बातमें आती है कि मेरा मन निर्विकार हो जाय। दु:ख-सुखकी स्थित रहो। इसको कहते हैं—'समदु:खसुख: स्वस्थ:।' घटनाका मेरे मनपर असर न पड़े। अनुकूलता और 'स्व' में स्थित हो गये, बस!'स्व' सदा ही निर्विकार प्रतिकूलताका असर न पड़े। यदि ऐसी मनकी अवस्था है। 'स्व' में कभी विकार होता ही नहीं। विकार हो जाय तो तत्त्वज्ञान हो गया और यदि मनपर असर अन्त:करणमें होता है, उसके साथ मिलकर आप पड़ता है तो तत्त्वज्ञान नहीं हुआ। इस वास्ते इस बातको अपनेको विकारी मान लेते हो और सुखी-दुखी होते हो। आप ठीक तरहसे समझें कि असर किसपर पडता है? कभी-कभी मुझे बहुत बड़ा भारी आश्चर्य लगता है मनपर पड़ता है, बुद्धिपर पड़ता है, शरीरपर पड़ता है, कि कहाँ गाड़ी अटकी हुई है ? पापकर्म करनेकी बात मैं इन्द्रियोंपर पड़ता है। जैसे-रुपये आये, नफा हुआ तो कहता ही नहीं। जो लोग सत्संग करते हैं—वे पाप करते आपके मनमें प्रसन्नता हुई। रुपये चले गये, घाटा लग हैं, ऐसा मेरे मनमें आता ही नहीं। आप सत्संगमें आये हो गया तो आपका मन दुखी हो गया। मनमें नफा-नुकसान सत्संग सुननेके लिये, भजन-ध्यान करनेके लिये, कल्याण

भाग ९४ करनेके लिये; फिर भी आप पाप ही करो तो यहाँ क्यों प्रसन्न हुए, न मरनेपर रोये। धन उसके हो गया और आये हो? पाप कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिये। चला गया, आप नहीं रोये। आपके होकर चला गया जिसको अन्याय समझते हो, उसको स्वप्नमें भी मत करो। तो रोते हो। 'क्यों रोते हो भाई? आपके पास पहले था अपनी तरफसे पापका विचार ही छोड दो। आपके मनमें नहीं, बीचमें हो गया, फिर चला गया। आप तो जैसे गन्दी स्फुरणा आ गयी, अच्छी स्फुरणा आ गयी, बुरी आ पहले थे, वैसे हो गये, तब रोना किस लिये?' गयी, शोक आ गया, चिन्ता आ गयी, हर्ष हो गया, कहीं आपको कुछ भी स्पर्श करता नहीं। आप अपनेमें राग हो, गया, कहीं द्वेष हो गया-ये ही तो होते हैं? ये स्थित रहो, रोओ क्यों? आप बहनेवाली घटनाओं, होनेपर भी आप अपनेमें स्थित रहो, उनसे मिलो मत। परिस्थितियों, पदार्थों, व्याक्तियोंसे चिपकोगे तो रोओगे उनके साथ मिलते हो, यह प्रकृतिस्थ होना है। प्रकृतिके मुफ्तमें। संसारका दु:ख मुफ्तमें आपने पकड़ रखा है, साथ मिले रहनेसे पाप भी लगेगा, जन्म-मरण भी होगा, उडता तीर अपनेपर ले रहे हो। भगवानुने दु:ख पैदा किया दु:ख भी होगा, सब कुछ होगा—'कारणं गुणसङ्गोऽस्य ही नहीं, दु:ख है ही नहीं। आप स्वयं दु:ख पैदा कर लेते सदसद्योनिजन्मस्।' (गीता १३।२१)। हो। पता नहीं, आपको क्या शौक लगा है ? आप बदलने-वालेके लिये मिलो मत। भले ही बदलनेवालेके साथ एकता चीजें बनती हैं, पदार्थ आते हैं, जाते हैं। उनको देखकर भी आप अपनेमें ही स्थित रहो, क्योंकि आप दीखती रहे, पर उसके साथ आप मिले नहीं। मैं उससे उनको देखेनेवाले हो। देखनेवाला दीखनेवाली वस्तुओंसे अलग हूँ—ऐसा देखो। जहाँ अलगावका ज्ञान साफ हुआ अलग होता है—यह नियम है। सुखदायी परिस्थितिको कि विकार मिट जायँगे। मिले रहोगे तो विकार रहेंगे। भी आप देखते हो और दु:खदायी परिस्थितिको भी आप प्रश्न—स्वामीजी! हम मिले हुए तो हैं, इससे देखते हो। संयोगको भी आप देखते हो। वियोगको भी अलग कैसे हों? उत्तर-आप मिले हुए हो ही नहीं। यदि आप आप देखते हो। देखनेवाले आपमें क्या अन्तर पडा? देखनेवाले आप तो वही रहे। मिले हुए होते तो आप भी बचपन, जवानी, बुढापेके मान लो, हम गंगाजीके किनारे खड़े हैं। बहुत-साथ बदलते। आप तो कहते हो कि 'मैं वही हूँ, पर से सिलपट (काठके टुकड़े) बहते हुए आ जायँ, उनको बचपन चला गया, जवानी चली गयी, बुढापा आ गया, देखकर हम खिल-खिलाकर हँस पडें और मनमें सोचें आप तो वही रहे। आप अलग हो, तब तो आप वही कि बहुत आनन्द हो गया। दूसरे दिन वहीं खड़े रहे और रहे ? आप तीनोंको जानते हो। जाननेवाला जाननेमें सिलपट एक भी न आये, उधरसे बह जाय, अब हम आनेवाली अवस्थाओंसे अलग होता है तो आप अलग जोर-जोरसे रोने लगें। कोई पूछे कि 'भाई, क्यों रोते हुए कि एक हुए? मिले हुए आप हो नहीं, जानते हो हो?' तो हम कहें कि 'भाई, आज एक भी सिलपट कि मिले हुए नहीं हैं। फिर भी अपनेको मिले हुए मानते हमारे पाससे बहकर नहीं गया। सब-के-सब उधरसे हो। बस, आजसे इसको मत मानो। बहकर चले गये।' अब जरा विचार करो कि अपनेमें प्रश्न—कैसे नहीं मानें ? हमें तो मिला हुआ दीखता है ? क्या फर्क पड़ा? सिलपट इधर आकर बह जाय तो उत्तर-आप दीखनेवालेको आदर मत दो, अपने क्या ? तुम तो उन्हें छूते नहीं। तुम्हारे पास वे रहते नहीं। अनुभवको आदर दो। गीताजीके वचनोंका आदर करो वे तो बहते हैं और तुम खडे हो। पासमें आकर सिलपट कि हम अलग हैं। चाहे घुला-मिला दीखे, साक्षात् बह गया तो तुम खुश हो गये। दुरसे बहकर चला गया मिला हुआ दीखे, परंतु मैं इनसे अलग हूँ—इतना मान तो रोने लग गये—यह मूर्खता ही तो हुई! लो। प्रत्यक्ष अनुभव है कि बचपनसे आजतक शरीर ऐसे ही बेटेका जन्म हुआ तो आप प्रसन्न हो गये, बदला है, पर मैं वही हूँ। इस अनुभवके आधारपर यह बेटा मर गया तो रोने लग गये। किसी दूसरेके भी लड़का मान लो कि शरीर अलग है, मैं अलग हूँ। यदि फिर हिमानिकारहातानिकार वासार विपाद विपादका कि त्यापिकार हिन्द्र है है जिस्सार है जिस्सार का उन्हर प्राचिक कि प्राच संख्या ९] आसरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण चिरायता, कुटकी आदि आँख भींचकर पी लेते हो, ऐसे कहो—'महाराज, मुझे ऐसा अनुभव नहीं हो रहा है।' इतनी बात पक्की जान लो कि 'हूँ' तो अलग ही। यदि ही वास्तविक स्वस्थ होनेके लिये 'मैं अलग हूँ'—इस अलग न होता तो मरनेपर शरीर यहाँ नहीं रहता. साथमें दवाईको पी लो। फिर भी अलग न दीखे तो व्याकुल जाता अथवा शरीरके साथ मैं यहाँ रहता। न आप हो जाओ। जोरदार व्याकुलता होगी तो चट अलगावका शरीरके साथ रहते हो और न आपके साथ शरीर जाता अनुभव हो जायगा। भोगोंमें रस लेते रहे, सुख भोगते है। तो एक कैसे हैं ? दो हुए कि नहीं ? जैसे, मैं मकानमें रहे तो कितना भी पढ जाय, पण्डित बन जाय, चारों वेद रहता हूँ तो मैं और मकान एक कैसे हो गये? मैं पढ जाय, पर कभी शरीरसे अलगावका अनुभव नहीं मकानसे अलग चला जाता हूँ तो मकान और मैं दो हुए होगा। व्याकुल हो जाओ कि ऐसा अनुभव जल्दी-से-न ? ऐसे ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बृद्धि आदि मकान हैं। जल्दी कैसे हो? तो आपको घुला-मिला दीखना बन्द आप इसमें रहनेवाले हो, रहते हो और निकल भी जाते हो जायगा; क्योंकि घुले-मिलेकी मान्यता भूल है। वह हो। आप इसके साथ एक नहीं हो। एकता आपकी भूल अब नहीं करेंगे-ऐसा दुढ विचार करनेसे फिर इस मानी हुई है। यह आप सबका अनुभव है। भूलके मिटनेमें देरी नहीं लगेगी। जैसे, आप स्वस्थ होनेके लिये कडवी दवा नारायण! नारायण!! नारायण!!! आसुरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण अभक्ष्य-भक्षण—स्वास्थ्यविशेषज्ञ कहते रहें कि ज्वरके रोगीके मस्तकपर सहानुभृतिका हाथ रखते भय लगता होगा कि ज्वर न चढ़ बैठे, रख भी दिया तो

मांसाहारसे अनेक रोग होते हैं; किंतु आजके मानवकी

जीभ मानती है? मांस, अण्डा, मछली और जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम। जिह्वाकी तृप्ति—कछ्ए, मेंढक, घोंघे—पता नहीं क्या-क्या उदरमें भर लेता है आज मनुष्य। नाक-भौं सिकोडना व्यर्थ है। आजके बडे-बडे होटलोंका

बावर्चीखाना देखा है कभी? और चर्बी—किसकी चर्बी उपयोगमें आ रही है, इससे कहाँ किसीको

मतलब है। मानवता-शृद्धाचार शृद्ध विचारकी पुकार; किंतु पुकारका क्या अर्थ है, जब मनुष्यका आहार ही

अपवित्र है। रक्त, मांस, मन-बुद्धिका निर्माण वायुसे तो होनेसे रहा। आहारसे ही तो उन्हें बनना है और आजका आहार हाय! उच्छिष्ट—'असभ्य—पिछड़े हुए लोग हैं वे, जो

आजकी प्रगतिशील पार्टियोंमें योग नहीं दे पाते।' यह बात आपने भी सुनी होगी। आजकी प्रगतिशील पार्टियाँ — आहारकी प्लेटें एक-एक और सबके

जुठा— यही सब तो पिछड़ेपनेकी बातें हैं!

साबुनसे हाथ धोना चाहिये; किंतु सबका यह जूठा'''''। होटलोंमें तथा अन्य सार्वजनिक भोजनस्थानोंमेंसे अधिकांशमें ग्राहककी प्लेटका बचा भोजन उपयोग योग्य हो तो राशिमें चला जाता है। स्वास्थ्यके नियम, सदाचारके नियम-लेकिन आजकी प्रगतिशीलता इधर देखने लगे तो प्रगति—

मनुष्यकी यह तीव्रतम प्रगति पतनकी ओर है, यह

दुसरी बात।

अपवित्रता—आजका सुशिक्षित स्वच्छ तो समझ पाता है, लेकिन पवित्र क्या? पवित्रताका अर्थ उसकी समझसे बाहर है। अपवित्र स्थानपर, अपवित्र लोगोंद्वारा प्रस्तुत

अभक्ष्य—अपवित्र भोजन वह स्वयं अपवित्र दशामें नित्य ही तो करता है। स्वच्छ कमरा, उजला मेजपोश, चमकते काँटे-चम्मच हों बस—वह स्वयं बिना हाथ धोये, जुता पहिने भोजन करेगा, अपवित्र भोजन करेगा, कुत्तोंके साथ बैठकर भोजन करेगा—करता

चम्मच पृथक्-पृथक्। चम्मचसे उठाइये और मुखमें ही है। यह आहार उसके मनको अपवित्र करता है— डालिये। एक प्लेटमें सबके चम्मच-उच्छिष्ट-ठीक; किंतु मनकी पवित्रताकी उसे चिन्ता भी तो हो। ऐसेमें रोग हों तो क्या आश्चर्य!

[भाग ९४ श्राद्ध—क्या, क्यों, कैसे ? (श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी) प्रश्न—ऐसा क्यों करते हैं, शरीरमें क्यों न आयें? गृहस्थके नित्य यज्ञ — गृहस्थको अपने दैनिक उत्तर—जिससे उनके वंशज उनकी ममतामें फँस जीवनमें अनेक कार्य करने पडते हैं और कहीं-न-कहीं रोजमर्राके कार्यके कारण जीव-जन्तुओंकी हत्या होती न जायँ, फिर कार्य करनेमें बाधा आयेगी। निमन्त्रित है। अहिंसाको जीवनका सर्वश्रेष्ठ मूल्य माननेवाले ब्राह्मणोंमें मृत पितृ वायुकी तरह प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसे भारतीय ऋषियोंने गृहस्थको इन पापोंसे मुक्त करनेके पितृस्वरूप ब्राह्मणोंका ही श्राद्धकर्ता पूजन करता है। लिये पाँच महायज्ञका विधान बनाया। निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्। पाँच महायज्ञ—(१) अध्ययन, अध्यापन— वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥ (ब्रह्मयज्ञ), (२) अन्न, जलद्वारा पितरोंका तर्पण— (मनुस्मृति ३।१८९) (पितृयज्ञ), (३) देवताओंका नित्य होम—(देवयज्ञ), नोट — श्रद्धापूर्वक मृत पुरुषोंके निमित्त यथाविधि (४) गाय, कुत्ता, कौआको अन्नदान—(भूतयज्ञ), जो कुछ ब्राह्मण-भोजन, पिण्डदानादि देशकाल और (५) अतिथियोंका सत्कार—(मनुष्ययज्ञ)। पात्र देखकर किया जाता है, वही वैदिक श्राद्ध-कर्म है। अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। प्रश्न—यदि श्राद्धमें पितर आकर भोजनका सारांश ग्रहण करते हैं, तो भोजनमें कुछ कमी क्यों नहीं आती होमो दैवो बलिभौतौ नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनुस्मृति ३।७०) है ? प्रश्न-हमारे किये हुए श्राद्धका फल (अन्न, उत्तर—पितरोंमें ऐसी शक्ति है कि वे प्रदत्त भोजनका सार अंश ग्रहण करके भी उस वस्तुमें तनिक जल) पितरोंको कैसे मिलेगा? भी विकृति नहीं आने देते हैं। जैसे-उत्तर-जिस तरह पिताका कमाया हुआ धन पुत्रको मिल जाता है, इसी तरह पुत्रका दिया अन्न, जल (१) हाथी कैथा फलको खाकर उसका सार पिताको मिल जाता है। श्राद्ध ही पुत्रको अपने पिताकी ग्रहण कर लेता है। सम्पत्तिका अधिकारी सिद्ध करता है। (२) मधुमिक्खयाँ फूलोंका सारांश ग्रहणकर प्रश्न-पितर आते हैं तो हमें दिखते क्यों नहीं? उससे मधु तैयार कर देती हैं। फूलोंमें विकृति नहीं उत्तर—जैसे देवयज्ञमें इन्द्रादि देवताओंकी पूजा आती। (३) हंस नीर-क्षीरको अलग-अलग कर देता है। की जाती है और उस पूजाका आधार अग्नि होती है, (४) चुम्बक जड़ लोहेको आकर्षित कर लेते हैं। वैसे ही पितृयज्ञमें पूजनीय पितर होते हैं और होमकी देवता लोग न तो भोजन करते हैं, न ही पानी पीते अग्निके स्थानपर ब्राह्मणका मुख होता है। प्रश्न—ये रहते कहाँ हैं? हैं। वे तो उन वस्तुओंको देखकर तृप्त हो जाते हैं। उत्तर-परमात्माकी सृष्टिमें जैसे देवलोक आदि न वै देवा अश्ननित व विनर्तन्त दुष्ट वै तृप्यन्ति। लोक हैं और उनके अधिष्ठाता इन्द्र आदि देव माने जाते प्रश्न-श्राद्धकर्ता जो अपने पितरोंके लिये हव्य हैं, वैसे ही पितृलोक भी एक स्वतन्त्र लोक है, जो और कव्य देते हैं, वे पितृलोक कैसे पहुँचते हैं और दक्षिण दिशामें भूलोकके ऊपर चन्द्रमण्डलके अन्तर्गत पहँचानेवाले कौन होते हैं? तथा उसके आस-पास है। मनुष्य जैसे योगके प्रभावसे उत्तर—जब नाम और गोत्र श्राद्धीय वैदिक अदृश्य हो सकते हैं, वैसे ही पितृदेव भी अदृश्य, मन्त्रके साथ बोले जाते हैं, तब मन्त्रशक्तिद्वारा उन-उन सुक्ष्मरूपमें आते हैं। पितरोंके पास (उनके पितरोंके पास) उनके प्रीत्यर्थ दिये

संख्या ९] श्राद्ध-क्य	ग, क्यों, कैसे ? २१
***********************************	*****************
हव्य-कव्य पहुँच जाते हैं।	प्रश्न—मृत पुरुष तो अपने शुभाशुभ कर्मोंद्वारा
प्रश्न— वह पहुँचेगा कब?	विभिन्न योनियोंमें चले गये। (पशु, पक्षी, कीट और
उत्तर—जब कि भक्तिपूर्वक और विधिपूर्वक किय	मनुष्य) फिर वो मनुष्य भोजनसे कैसे तृप्त होंगे?
जाय।	उत्तर—जिस योनिमें मृत पुरुष जाता है, वसु, रुद्र
प्रश्न —कैसे पहुँचेगा?	और आदित्य श्राद्धकर्ताद्वारा प्रदत्त अन्नको उसी जातिके योग्य
उत्तर—ब्राह्मणकी उदराग्नि आहुत उस पितृनिमित्तक	अोर वैसा ही खाद्य बनाकर उनके पास पहुँचा देते हैं।
अन्नको उसको वैश्वानर अग्नि सूक्ष्म करती है और उस	वे देवताको—अमृत, गन्धर्वको—चन्दन-गीतादिके
अग्निको महाग्नि आकृष्ट करती है तथा उस अग्निको	र रूपमें, पशुको—तृण, सर्पको—वायु, यक्षको—पेय द्रव्य,
सूक्ष्म अन्नसहित सूर्य खींचता है। 'अगौ प्रास्ताहुतिः	राक्षस-प्रेतको—तदुचित भोजन, मनुष्यको—अन्न, दूध
सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्	आदिके रूपमें प्रदान करते हैं।
ततः प्रजाः॥' (मनुस्मृति ३।७६)	प्रश्न—श्राद्धके लाभ और वैदिक आधार क्या हैं ?
सूर्यमें पहुँचे हुए उस सूक्ष्म अन्नको चन्द्रमा सूर्यकी	उत्तर—मनुष्योंद्वारा जब पितरोंको तृप्त कर दिया
सुषुम्णा रश्मि खींचती है और उससे ऊपर रहनेवाले	जाता है, फिर वे मानव पितर श्राद्धकर्ताको (१) दीर्घ
हमारे सूक्ष्म पितरोंतक वह पहुँच जाता है। इससे	जीवन, (२) आज्ञाकारी सन्तान, (३) विपुल धन, (४)
आप्यायित हुए वे पितर हमारे परिवारमें संरक्षकताके नाते	विविध विद्याएँ, (५) राज्य, (६) संसारके सभी
सुख-समृद्धि रखते हैं।	सुखोपभोग तथा (७) स्वर्ग एवं दुर्लभ मोक्षतक प्रदान
प्रश्न—यदि अन्यके खानेपर अन्यकी तृप्ति होती	करते हैं।
है, तो प्रवासके लिये चलते समय पाथेय, मार्गका भोजन	प्रश्न—श्राद्ध कब-कब किया जाता है?
क्यों दिया जाय, घरपर ही ब्राह्मणको भोजन क्यों न कर	उत्तर —याज्ञवल्क्यके अनुसार—(१) अमावस्या,
दिया जाय?	(२) अष्टका, (३) वृद्धि, (४) कृष्णपक्ष, (५) दोनों
उत्तर—सूक्ष्म जगत्में सूक्ष्म सारग्राही दिव्य	अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), (६) द्रव्य, (७)
शक्तिसम्पन्न पितृगण सब करनेकी शक्ति रखते हैं। वसु	ब्राह्मण-सम्प्राप्ति, (८) विषुवत, (९) सूर्य-संक्रान्तियाँ,
रुद्र आदि पितृदेव श्राद्धीय अन्नादिका भोजनकर स्वय	(१०) व्यतीपात, (११) गजच्छाया, (१२) चन्द्रग्रहण
तृप्त होते और पितरोंको भी तृप्त करते हैं। स्थूल जगत्मे	ं एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्राद्ध करना चाहिये।
ऐसा कोई साधन ही नहीं है, जिससे भोजन प्रवासीके	(१) अमावास्या —कृष्णपक्षकी अन्तिम तिथि,
पास पहुँच जाय। स्थूल जगत्में स्थूल भोजन भेजनेक	यह प्रतिमास आती है।
मार्ग भी स्थूल ही है।	(२) अष्टका —मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन
प्रश्न —यदि श्राद्धसे मृत पुरुषोंकी तृप्ति हो जार्त	
है, तो बुझा हुआ दीपक तेल डालते ही प्रज्वलित हे	ि तिथियोंकी विशेष संज्ञा है। (चारों महीनोंकी इन
उठना चाहिये?	तिथियोंको श्राद्ध करें।)
उत्तर—दीपक जलानेका साधन केवल तेल ही	(३) वृद्धि —आपके घरमें कोई वृद्धि या मंगल
नहीं, अग्नि भी तो है। वह नहीं रहा तो कैसे जलेगा?	कार्य हो तो उससे पूर्व पितरोंके लिये किया जानेवाला श्राद्ध
केवल लकड़ीसे आप रसोई नहीं बना सकते। आटा, दाल,	
चावल सब चाहिये। पितरका शरीर भले ही खत्म हो गय	(४) कृष्णपक्ष— यह पक्ष श्राद्धके लिये सामान्य
हो, पर वह तो लिंगशरीरसे पितृलोकमें विद्यमान है।	काल माना गया है।

भाग ९४ आश्विन कृष्णकी त्रयोदशीको होता है। सूर्य कन्याराशिपर (५) अयन (उत्तरायण—मकर-संक्रान्ति (माघ)-से मिथुन-संक्रान्ति), (दक्षिणायन—कर्क-रहता है। वह महालय एवं गजच्छाया कहलाता है। यह मन् कहते हैं। संक्रान्ति (श्रावण)-से धनु-संक्रान्ति) मकर एवं कर्क-संक्रान्तिपर श्राद्ध करना चाहिये। (२) मनु कहते हैं - वर्षा ऋतुमें मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशीके दिन मधुमिश्रित जो कुछ भी पितरोंको दिया (६) द्रव्य—जिस दिन चावल, कुशर, घृत, दुग्ध आदि द्रव्योंको विपुल प्राप्ति हो जाय। उस दिन भी जाता है, वह अक्षय फलप्रद हो जाता है। यह आश्विन मासमें कृष्णपक्षमें ही आती है। करना चाहिये। (७) **ब्राह्मण-सम्प्राप्ति—**सदाचारी, विद्वान् वैदिक (३) वैदिक मन्त्र भी यही मानते हैं। जो मन जैसे ब्राह्मणके घर पहुँचनेपर, उस दिन भी श्राद्ध करना वेगवान और शुभ कार्यमें समर्थ हैं और शोभन कर्म करनेवाले हैं, इस मघा नक्षत्रमें आहृत वे पितर हमारे चाहिये। यज्ञमें पधारें। (पुरोनुवाक्या, ६) (८) विषुवत् — मेष और तुला-संक्रान्तिका नाम है। (४) बृहन्मनु कहते हैं - वर्षाकालमें वृष्टि, कीचड़ आदिसे विपुल सामग्रीके यातायातमें स्वभावत: रुकावट (९) सूर्य-सक्रान्ति—वर्षमें १२ संक्रान्तियाँ होती आ जाती है। उन दिनों तर्पणकी व्यवस्था नहीं हो पाती (१०) व्यतीपात—अमावास्या, जो रविवारको एवं पितृगण खिन्न हो जाते हैं, वह आषाढी पूर्णिमासे पाँचवें पक्षमें अन्न-जलकी आकांक्षा करते हैं। तब वर्षा हो और जिस दिन आश्विन, मृगशिरा, आर्द्री, आश्लेषा, श्रावण और धनिष्ठा इनमेंसे एक नक्षत्र हो। बीत जानेपर शरद् ऋतु आरम्भ हो जाती है एवं फल, फुल, निष्पंक मार्ग, निर्मल जल एवं नवशाक, धान्य (११) गजच्छाया योग—यह उस त्रयोदशीके आदि सभी सुविधाएँ जुट जाती हैं। दिन होता है, जब सूर्य हस्त नक्षत्र और चन्द्र मघा नक्षत्रपर होता है, (चतुर्वर्गचिन्तामणि)। (५) स्कन्दपुराण, नागरखण्डका वचन— (१२) चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण—इस समय आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे॥ ब्राह्मणोंको कच्चा अन्न (सीधा) दिया जाता है। मृतेऽहनि पितुर्यो वै श्राब्द्वं दास्यित मानवः। प्रश्न—आश्विन कृष्णपक्षमें ही विशेष रूपसे कन्याराशिपर सूर्य होनेपर आषाढी पूर्णिमासे पाँचवें पितरोंका श्राद्ध क्यों किया जाता है? पक्षमें केवल अपने पिताकी मरणतिथिको जो श्राद्ध उत्तर—जिस समय हमारा कोई जाननेवाला बडी करता है। वह निश्चय ही वर्षभर तुप्त रहते हैं। पोस्टपर हो तो उससे उस समय आप अपना काम करवा प्रश्न—योग्य ब्राह्मण नहीं मिलते तो श्राद्ध करें, सकते हैं। जब वह उस पोस्टसे हट जायगा, तब वह तो कैसे करें? इतनी सकुशलतासे काम नहीं कर पायेगा। इसी प्रकार उत्तर—श्राद्धमें समयानुरूप जैसा भी और जितना उत्तरायणमें देवोंका राज्य है, दक्षिणायनमें पितरोंका भी विद्वान् पवित्र बाह्मण मिले, उसीको भोजन कराकर राज्य। उत्तरायण, शुक्लपक्ष और पूर्वाहनमें देवकार्यका अपना श्राद्धकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। सामान्य विधान है। जब पितरोंका राज्य होता है तो उस कालके ब्राह्मणोंकी पंक्तिके सिरेपर एक वेदपाठी, सदाचारी अधिकारी वह होते हैं। उनके पास सहज ही (हव्य-ब्राह्मणको बैठा दें तो वह एक ही ब्राह्मण पंक्तिमें बैठे सभी हजारों ब्राह्मणोंको पवित्र और श्राद्धाधिकारी बना कव्य) पहुँच जाता है। प्रश्न—आश्विन कृष्णपक्ष ही क्यों? देता है। यदि ब्राह्मण ही न मिले तो देवल ऋषि कहते हैं कि श्राद्ध द्रव्य—(१) अग्निको ही भेंट कर दें।(२) उत्तर—(१) गजच्छाया योग—यह त्र्यांसभी के प्रमान के प्रम के प्रमान के प्र

संख्या ९] श्र	ाद्ध—क्या, क्यों, कैसे ?
**********************	***************************************
पर श्राद्धका लोप न होने दें।	प्रश्न —काकबलि क्या है?
सर्वाभावे क्षिपेदग्नौ गवे दद्यादथाप्सु व	ा। उत्तर —काकको बलि (खाद्यपदार्थ) देकर यह
नैव प्राप्तस्य लोपोऽस्ति पैतृकस्य विशेषत	r: ॥ घोषित करते हैं कि संसारके सभी जीव ईश्वरकी सन्तान
प्रश्न —अत्यन्त गरीब व्यक्ति श्राद्ध र	कैसे कर हैं। (अमृतस्य पुत्रः) पितृलोकसे सम्बन्ध धर्मराज—
पायेगा ?	यमराजका है; और उनकी रुचि विशेषत: काली
उत्तर —उपाय—	वस्तुओंपर होती है। जैसे—काकको पृथ्वीपर यमराजका
(१) बैलको घास खिला दे या (२) अि	निमें सूखे समशील दूत माना जाता है। काकबलि देकर यमराज
तृण डाल दें, होम कर दे, पर श्राद्धका लोप न	होने दें। प्रसन्न होंगे और पितरोंको अधिक कष्ट न होगा
घास खिलानेके पैसे न हों और न ही दियासल	ाई हो तो पितृयज्ञ या श्राद्ध-कृत्यसे प्रेतयोनिप्राप्त जीवोंका प्रेतत्व
वह परम निर्धन व्यक्ति श्राद्धके दिन वनमें जाव	ьर जोर- निवृत्त हो जाता है। जैसे सर्पद्वारा काटे गये व्यक्तिकी
जोरसे रोये और कहे—	मूर्च्छा नौसादर और कली चूना सुँघाते ही मिट जाती है।
'मैं बड़ा पापी, दरिद्र हूँ, जो श्राद्ध नहीं व	कर पाता' प्रश्न —कितनी शक्तियोंसे श्राद्ध-कर्म किये जाते
यदि रोया नहीं जाय तो (वराहपुराणके अनुसा	
जाकर सूर्यादि लोकपालोंको अपनी काँखका मूल	दिखाकर उत्तर—तीन शक्तियोंसे श्राद्धकर्म किये जाते हैं—
ऊँचे स्वरसे कहे कि मेरे पास धन या श्राद्धोपय	
पदार्थ नहीं है।	मनःशक्ति —श्राद्धमें मनःशक्तिका सुनियोजित प्रयोग
सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शक	
सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिर्ष्या	
इस प्रकार पितरोंको केवल नमस्कार क	_
परमेश्वरके शासनमें—	
(१) कर्मक्षेत्रमें मुख्य अधिकारी अधिष्ट	प्राता देव , चन्द्रमा मनका अधिष्ठातृदेवता है। मनका चन्द्रलोकसे
(२) ज्ञानक्षेत्रमें मुख्य अधिष्ठाता ऋषिगण	, स्वास्थ्य स्वाभाविक सम्बन्ध होनेके कारण चन्द्रलोकवासी पितर
क्षेत्रके मुख्याधिष्ठाता पितृगण ।	जरूर आते हैं, जब सच्चे मनसे बुलाया जाय।
(१) देवगण —यह हमारे जीवनके व	र्ज्यक्षेत्रका मन्त्रशक्ति— शब्दमें सारे संसारको अपने अनुकूल
परिचालन करते हैं। यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठान	
इन कर्म-संचालक देवोंके कृपापात्र बन सक	ते हैं। स्वाध्याय-शील ब्रह्मशक्तिके बेजोड़ ट्रांसमीटर (ब्राह्मण)-
(२) ऋषिगण —इनकी कृपासे ही हमा	रा ज्ञानका से प्रसारित हो तो क्या मृत पुरुषोंका प्रेतत्व नहीं खत्म होता
क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होता हुआ असीम हो	जाता है। द्रव्यशक्ति— द्रव्योंमें अलौकिक शक्ति है।
(१) शास्त्र-ज्ञान, (२) व्यवहार-ज्ञान, (३)	
ज्ञान, (४) आत्मदर्शन, (५) किम्बहुना,	
ऋषिकृपापर ही निर्भर है।	तृप्ति हो। जैसे मधुमिश्रित द्रव्य देनेपर पितरोंकी अक्षय
(३) पितर —इनके आधीन जीवनका प्राप	
विभाग है। हम उन्हें श्राद्धादि कृत्योंद्वारा प्रस	न्न रखेंगे 👤 इसके अलावा घृत, दुग्धसे शीघ्रातिशीघ्र तृप्ति
तो ऋतुओंका उचित परिवर्तन रहेगा, जिससे रो	
होंगे। स्थूल शरीरप्राप्तिका सारा दायित्व पित	
जैसे गौरवर्ण, निरोगता आदि।	प्रकट कर सकते हैं।

(३) तीसरा कारण—तीन पीढ़ीका शुक्र सम्बन्ध **प्रश्न**—यदि महालय श्राद्ध आश्विन कृष्णपक्षमें न कर पायें तो कब करें? होता है।

िभाग ९४

मनुष्यमें सन्तानोत्पादक शक्तियुक्त धात शुक्र ही है

५६का क्रम इस प्रकार है—(२१-पिता, १५-

प्रश्न—पित् उपासना-विश्वात्म-भावना क्या है?

उत्तर-पिछले जन्मोंको लेकर विचार किया जाय

और इस धातुमें वैज्ञानिकोंने कुल ८४ अंश माने हैं,

जिसमें २८ अंश खान-पानद्वारा उपार्जित हैं, शेष ५६

पितामह, १०-प्रपितामह, चौथे पुरुष-६, पाँचवेंसे-३,

छठे पुरुषसे-१) (२१+१५+१०+६+३+१=५६)। इस

तरह मनुष्यका छः पीढियोंसे साक्षात् शुक्रका सम्बन्ध

तो संसारका प्रत्येक प्राणी माता, पिता या बन्धु निकलेगा,

क्योंकि ८४ लाख योनियोंमें संसारका कोई प्राणी ऐसा

न होगा, जो हमारा पिता, पुत्र, माता या भाई न बना हों।

पूर्वजोंद्वारा प्राप्त हैं (५६+२८=८४)।

रहता है और अपने सहित सात पीढ़ियाँ।

उत्तर—कन्या संक्रान्तिसे वृश्चिक संक्रान्तितक मृत्य-तिथिको महालयका अपकर्ष श्राद्ध कर सकते हैं।

प्रश्न-पिता, पितामह और प्रपितामहको ही श्राद्धके

लिये बुलाया क्यों जाता है?

उत्तर—(१) पितृलोक बहुत बड़ा है और वहाँ

हमारा दिया हुआ पिण्डादि दान हमारे पिताको ही

पहुँचे, इस कारण विल्दयत जोड़ देते हैं और कभी

दो पिता-पुत्रके नाम भी एकसे हों तो उस संशयको दूर करनेके लिये पितामह और प्रपितामहका भी नाम

जोडा जाता है। येन पितुः पितरो ये पितामहा। तेभ्यः पितृभ्यो

नमसा विधेम॥ शास्त्रोंमें हमारी तीन पीढ़ियोंको इन दृष्टिसे अलग देखा गया है, जैसे-

पीढी देव गुण पिता वसु सत्त्व दादा रज परदादा आदित्य (सूर्य) तम

(२) दूसरा कारण यह भी है कि पितरोंके तीन ही अधिष्ठाता देव हैं। तीन पीढीके बाद पुरुषोंसे श्राद्धकर्ताका

कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता है। सातवीं पीढीके बाद

जन्म-मरणके अशौचका भी सम्बन्ध नहीं रह जाता।

इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड हमारा बन्ध-बान्धव है। श्राद्ध हमें पितरोंकी तृप्तिके साथ विश्वप्रेमका

अमूल्य पाठ पढ़ाते हैं। यही हमारी सनातन संस्कृति है, जो विश्वमें सबसे उत्तम है। मातामहश्राद्ध—आजकल छोटे परिवार हैं, वहाँ कभी पुत्र-पौत्र उपलब्ध नहीं होते, अत: दौहित्रद्वारा अपने नाना

या पुत्रीद्वारा अपने पिताको तर्पण दिया जाता है और श्राद्धमें पिता और माता दोनोंका ही श्राद्ध करना आवश्यक है।

श्राद्धसे जगत्की तृप्ति

मनुष्यको पितृगणकी सन्तुष्टि तथा अपने कल्याणके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। श्राद्धकर्ता

केवल अपने पितरोंको ही तृप्त नहीं करता, बल्कि वह सम्पूर्ण जगत्को सन्तुष्ट करता है—

यो वा विधानतःश्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम् । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः ॥ । विश्वेदेवान् पितृगणान् पर्यग्निमनुजान् पशून्॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्यानलसुमारुतान्

सरीसृपान् पितृगणान् यच्चान्यद्भृतसंज्ञितान् । श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ 'जो मनुष्य अपने वैभवके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह साक्षात् ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त

समस्त प्राणियोंको तृप्त करता है। श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, नासत्य (अश्विनीकुमार), सूर्य, अनल (अग्नि), वायु, विश्वेदेव, पितृगण, मनुष्यगण, पशुगण, समस्त

भूतगण तथा सर्पगणको भी सन्तुष्ट करता हुआ सम्पूर्ण जगत्को सन्तुष्ट करता है।' [ब्रह्मपुराण]

अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें संख्या ९] सम-सामयिक— अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें (डॉ॰ श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी., एल.एल.एम., पी-एच.डी.) सुप्रीम कोर्टके समक्ष मुस्लिम पक्ष ऐसा कोई सबत ९ नवम्बर, सन् २०१९ ई० को भारतके उच्चतम न्यायालयकी ओरसे एक ऐतिहासिक फैसला दिया गया, नहीं दे सका कि जिससे यह साबित हो सके कि जिससे पाँच सौ वर्षोंसे चले आ रहे अयोध्याके मस्जिद-निर्माणके बादसे १८५६-५७ तक (अर्थात् श्रीरामजन्मभूमिमन्दिर और बाबरी मस्जिदके विवादका ३२५ वर्षके कालखण्डमें) वहाँ कोई नमाज पढ़ी जाती पटाक्षेप हो गया तथा भारत राष्ट्रके आराध्य देवता थी (देखें फैसलेके पृष्ठ-संख्या ९००—९०१)। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके भव्य मन्दिरके निर्माणका मार्ग सुप्रीम कोर्टके फैसलेके पृष्ठ संख्या ९०१-९०२ में कहा गया है कि अयोध्यामें १८५६—५७ और १९३४ प्रशस्त हो गया। परंतु बहुतोंको यह नहीं मालूम होगा कि अयोध्यामें विवादित मस्जिदका क्षेत्रफल सिर्फ में इन्हीं विवादोंको लेकर साम्प्रदायिक दंगे भी हुए थे। १५०० वर्ग गज ही था। यह बात सुप्रीम कोर्टके फैसलेके वर्ष १९३४ के दंगेमें इस विवादास्पद मस्जिदके पृष्ठ-संख्या ९२२ पर कही गयी है। परंतु फैसलेसे गुम्बदका एक हिस्सा क्षतिग्रस्त भी हुआ था। निहंग मुस्लिम पक्षकारोंको मिली है पाँच एकड़ (अर्थात् सिखोंने मस्जिदके अन्दर घुसकर एक झण्डा गाडा था ५×४८४०=२४,२०० वर्ग गज) जमीन। साथ ही इस और हवन-पूजा की थी। सुप्रीम कोर्टके फैसलेमें कहा गया है कि १८५६— जमीनपर उनको मालिकाना हक भी मिला है। बाबर या जिस किसीने भी जब रामजन्मभूमिपर मस्जिद बनवायी ५७ से १६ दिसंबर १९४९ तक वहाँ जुमेकी नमाज पढ़ी थी, तो उन्हें उसका मालिकाना हक कभी नहीं दिया था। तो जाती थी, परन्तु इसमें बीच-बीचमें व्यवधान भी आते रहे। अन्तिम बार जुमेकी नमाज १६ दिसम्बर १९४९ को रामजन्मभूमिपर अपने मालिकाना हकके बारेमें मुस्लिम पक्ष सुप्रीम कोर्टको सन्तुष्ट नहीं कर पाया। पढी गयी। मुगलोंके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंग्रेज कोर्टके फैसलेसे हिन्दुओंको क्या मिला? अगर हिन्दू पक्षको देखें तो सुप्रीम कोर्टके फैसलेसे सरकारने भी उस जमीनपर मालिकाना हक मुस्लिमोंको कभी नहीं दिया था, परंतु हाँ, उस मस्जिदके रखरखावके उन्हें रामजन्मभूमिके पूरे क्षेत्रमें बगैर किसी रोक-टोकके लिये कुछ पैसा दिया जाता था। वह जमीन नजूलकी भव्य मन्दिर बनवानेका कानूनी अधिकार मिल गया। रामजन्मभूमि-विवाद देशकी तीन-चौथाईसे अधिक भूमि थी। किसी वक्फकी प्रापर्टी नहीं थी। वहाँ कभी भी मुस्लिमोंका शान्तिपूर्ण कब्जा भी नहीं रहा। आबादीकी आस्थाके साथ जुड़ा रहा है और यह सवा सुप्रीम कोर्टके फैसलेमें पृष्ठ-संख्या ६३७ पर सौ सालसे ज्यादा समयसे अदालतोंमें लम्बित रहा है। हाईकोर्टके जस्टिस सुधीर अग्रवालके निर्णयका जिक्र अयोध्यामें कई मन्दिर हैं, परंतु रामजन्मभूमि अकेला ऐसा है। जस्टिस अग्रवालने कहा था कि मुझे इस बारेमें मन्दिर है, जहाँ गर्भगृह है। अन्य किसी मन्दिरमें गर्भगृह कोई सन्देह नहीं है कि विवादित बिल्डिंगके अन्दर नहीं है। इस विवादको निपटानेके लिये पाँच सदस्यीय और बाहर जो स्तम्भ लगे हैं, उनपर मानव आकृतियाँ खण्डपीठ बधाईकी पात्र है, जिसने सर्वसम्मतिसे अपना बनी हैं और कुछ जगह तो वे हिन्दू देवी-देवता-फैसला दिया। खण्डपीठके सदस्य थे—मुख्य न्यायाधीश जैसी लगती हैं। रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एस.ए. बोबोडे, न्यायमूर्ति डी. सुप्रीम कोर्टने कहा कि विवादित स्थानपर इस्लामिक वाई. चंद्रचूड, न्यायमूर्ति अशोक भूषण, और न्यायमूर्ति चिह्न हैं और वे आकृतियाँ भी हैं, जिनकी हिन्दू पूजा एस.अब्दुल नजीर। करते हैं। दोनों ही एक साथ मौजूद हैं। मध्यस्थताका प्रयास—सुप्रीम कोर्टने अपना फैसला

िभाग ९४ देनेसे पहले दोनों पक्षोंको पर्याप्त समय दिया था कि वे कहा गया था कि के. के. मुहम्मद कभी भी भारतीय आपसी समझौतेसे इस विवादको निपटा लें। मार्च २०१९ पुरातत्त्व सर्वेक्षणकी उस टीमके सदस्य नहीं थे, जिसने को सुप्रीम कोर्टने अपने एक रिटायर्ड जज फकीर वर्ष १९७६-७७ में अयोध्याके विवादित स्थलपर मोहम्मद इब्राहीम कालीफुल्लाकी अध्यक्षतामें एक उत्खनन कार्य किया था। समिति बनायी थी, जो कि इस मुद्देको बातचीतके इससे पहले भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (उत्तर)-जरिये निपटा सके। सिमितिके दो अन्य सदस्य थे, के पूर्व क्षेत्रीय निदेशक के. के. मुहम्मदने टाइम्स श्रीश्रीरविशंकर और वरिष्ठ वकील श्रीराम पाँचू। ऑफ इंडियामें प्रकाशित अपने एक इण्टरव्यूमें कहा था वर्ष २०१७ में भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि यह कि अयोध्याकी बाबरी मस्जिदके नीचे भगवान् मामला यदि आपसी समझौते से निपटा लिया जाय तो विष्णुका एक बडा मंदिर था। अच्छा होगा। देश के नरमपंथी मुसलमान हमेशा इस तरह यहाँ यह बता देना जरूरी है कि अयोध्यामें यह के समझौतेके पक्षमें रहे हैं। परंतु कट्टरपंथी हमेशा उत्खनन-कार्य श्री बी. बी. लालके नेतृत्वमें एक टीमने समझौतेका विरोध करते रहे। किया था, जिसके एकमात्र मुस्लिम सदस्य श्री के. के. जब यह मामला इलाहाबाद हाईकोर्टकी लखनऊ मुहम्मद थे। बेंचके सामने था, तब भी यह समझा जाता था कि श्री बी. बी. लालकी आयु अब लगभग एक सौ इसका समाधान यदि आपसी बातचीतसे हो जाय, तो वर्ष है और वह भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणके डाइरेक्टर जनरल भी रहे हैं। टाइम्स ऑफ इंडियाकी उस खबरके ज्यादा अच्छा होगा। परंतु ऐसा नहीं हो सका। अन्तमें वर्ष २०१० में हाईकोर्टको अपना फैसला सुनाना पड़ा। जवाबमें श्री बी. बी. लालने उस अखबारको एक ईमेल उसी फैसलेके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमें अपीलें दायर की भेजकर स्पष्ट किया कि के. के. महम्मद उस समय उनकी टीमके मेम्बर थे। गयी थीं, जिनपर शीर्ष अदालतका फैसला ९ नवम्बर, २०१९ ई० को आया। पुरातत्त्वविद् के. के. मुहम्मद भी अब भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणसे रिटायर हो चुके हैं और कालीकट समुचित शोधकी कमी—हाईकोर्टने अपने फैसलेके (केरल)-में रहते हैं। उनकी पुस्तक 'मैं हूँ भारतीय' बिन्द्-संख्या ३६२३ और ३६२४ में मुस्लिम पक्षके कुछ गवाहोंद्वारा प्रकाशित एक पुस्तिकाके बारेमें यह टिप्पणी (प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१८)-में एक अध्याय है—'अयोध्या—कुछ ऐतिहासिक तथ्य'। मूलतः की कि इस प्रकारके संवेदनशील मसलोंपर समुचित शोध किये बगैर कोई चीज छपवानेसे जनताके आपसी यह पुस्तक उन्होंने अपनी मातृभाषा मलयालममें मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंपर विपरीत प्रभाव पडा है। कोर्टने लिखी है। इसका हिन्दीमें अनुवाद हुआ है और यह आश्चर्य किया कि इस प्रकारके प्रकाशनको उन लोगोंने जल्दी ही तेलुगू, कन्नड़ और मराठी भाषाओंमें भी लिखा है, जो कि इतिहासकार या पुरातत्त्वविद् होनेका आनेवाली है। वह अपनी पुस्तकके उपर्युक्त अध्यायमें लिखते दावा करते हैं। पुरातत्त्वविद् श्री के. के. मुहम्मदकी भूमिका— हैं— सुप्रीम कोर्ट का फैसला आनेसे लगभग एक माह पूर्व प्रो. बी. बी. लालके नेतृत्वमें अयोध्या-उत्खनन टाइम्स ऑफ इंडियाने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के टीममें 'दिल्ली स्कूल ऑफ आर्किओलॉजी'से मैं एक इतिहास-विभागके चेयरमैनका एक पत्र खूब मोटा सदस्य था। उस समयके उत्खनन में मन्दिरका स्तम्भोंके श्रीचीक्d एतंत्राक Piace the Seryie the taga i/daga. gada harina la AMAD द अश्री प्रचिनिक Vहाने Ya Ayin a aga Ash

संख्या ९] अयोध्या-फैसला—	-कुछ अनकही बातें २७
*****************************	******************************
मिला। उत्खननके लिये जब मैं वहाँ पहुँचा, तब बाबरी	गुटकी मदद करनेके लिये कुछ वामपंथी इतिहासकार
मस्जिदकी दीवारोंमें मंदिरके स्तम्भ थे।''' स्तम्भके	सामने आये और बाबरी मस्जिद नहीं छोड़नेका उपदेश
नीचेके भागमें ११वीं एवं १२वीं शताब्दीके मन्दिरोंमें	दिया। वास्तवमें उन्हें मालूम नहीं था कि कितना बड़ा
दिखनेवाले पूर्ण कलश बनाये गये थे। मंदिर कलामें	पाप कर रहे हैं। ""दिल्लीके जवाहरलाल नेहरू
पूर्ण कलश आठ ऐश्वर्य-चिह्नोंमें एक है। सन् १९९२ ई०में	विश्व-विद्यालयके एस. गोपाल, रोमिला थापर,
बाबरी मस्जिद ढहाये जानेके पहले एक या दो स्तम्भ	बिपिन चन्द्रा जैसे इतिहासकारोंने 'रामायण'के ऐतिहासिक
नहीं, चौदह स्तम्भोंको हमने देखा है।	तथ्योंपर सवाल खड़े कर दिये और कहा कि १९वीं
यहाँ यह बता देना जरूरी है कि हाईकोर्टके निर्देशपर	सदीके पहले मन्दिर तोड़नेका सुबूत नहीं है।''' उनका
वर्ष २००३ ई०में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणने फिर वहाँ	साथ देनेके लिये प्रो. आर.एस. शर्मा, अनवर अली,
ग्राउण्ड पेनेट्रेटिंग (जी.पी.आर.) टेकनीकसे सर्वे किया	डी.एन. झा, सूरजभान, प्रो. इरफान हबीब आदि भी
था। जी.पी.आर. तकनीकसे जो जानकारी मिलती है, वह	आगे आये। तब एक बड़े गुटका समर्थन बाबरीवालोंको
पूर्ण वैज्ञानिक होती है। इससे जमीनके कई मीटर	मिल गया। इसमें केवल सूरजभान एक पुरातत्त्वविद्
अन्दरतककी छोटी-छोटी चीजोंकी भी थ्री डायमेन्शनल	हैं। प्रो. आर. एस. शर्माके साथ रहे कई इतिहासकारोंने
फोटो ली जा सकती है। यह जी.पी.आर. तकनीक वर्ष	बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीके विशेषज्ञोंके रूपमें कई
१९७६-७७ में भारतमें उपलब्ध नहीं थी। इस सर्वेमें पता	बैठकोंमें भाग लिया था।
चला कि मस्जिदके नीचे १७ पंक्तियोंमें ८५ खम्भे हैं।	बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीकी कई बैठकें भारत
प्रत्येक पंक्तिमें पाँच खम्भे हैं और ये सभी मूलत: हिन्दू	सरकारके भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्के अध्यक्ष
धर्मसे सम्बन्धित लग रहे हैं। मस्जिदकी अपनी कोई नींव	प्रो. इरफान हबीबकी अध्यक्षतामें होती थीं। बाबरी
नहीं थी। वह तो पूर्वस्थित संरचनाके ऊपर बनायी गयी	मस्जिद एक्शन कमेटीकी बैठक भारतीय इतिहास अनुसन्धान
थी।(देखें, सुप्रीम कोर्टका फैसला, पृष्ठ ९०५)	परिषद्के कार्यालयमें आयोजित करनेका परिषद्के तत्कालीन
वर्ष २००३ में डॉ० हरि मांझी और डॉ० बी.आर.	सदस्य सचिव इतिहासकार प्रो. एम.जी.एच. नारायणने
मणिकी देख–रेखमें जी.पी.आर. तकनीकसे जो सर्वे हुआ	विरोध भी किया था, किंतु प्रो. हबीबने उसे नहीं माना।
था, उसकी पूरी वीडिओग्राफी की गयी थी। उस सर्वे टीममें	के. के. मुहम्मद लिखते हैं कि उदाखादी ताकतोंको
कुछ मुस्लिम पुरातत्त्वविद् भी शामिल थे, जैसे कि गुलाम	हतोत्साहित करने और उग्रवादियोंको बढ़ावा देनेमें एक
सईउद्दीन ख्वाजा, अतीकुर रहमान सिद्दीकी, जुल्फिकार	अंग्रेजी अखबारकी भी भागीदारी रही।
अली, ए.ए. हाशमी आदि। यदि एक लाइनमें इन	अपनी पुस्तकमें के. के. मुहम्मद लिखते हैं—
लोगोंद्वारा किये गये सर्वेका निष्कर्ष बताया जाय, तो वह	'आई.सी.एच.आर.'(अर्थात् भारतीय इतिहास अनुसन्धान
यह था कि विवादित मस्जिदके नीचे एक विशाल विष्णु-	परिषद्)-में समस्याके समाधान चाहनेवाले लोग थे, परंतु
मन्दिर था।	इरफान हबीबके सामने वे कुछ कर नहीं सकते थे। स्वतंत्र
के.के. मुहम्मद अपनी पुस्तक में कहते हैं 'बाबरी	विचार प्रकट करनेवालोंको साम्प्रदायिक कहा जाता है।
मस्जिद हिन्दुओं को देकर समस्याका समाधान करनेके	पद्मश्री के. के. मुहम्मदको सच बोलनेके लिये
लिये मुसलमान नरमवादी तैयार थे, परंतु इसको खुलकर	नौकरीसे निलम्बित करने और जानसे मार देनेतककी
कहनेकी किसीमें हिम्मत नहीं थी।'	धमिकयाँ मिलती रही हैं। रिटायरमेंटके बाद अब उनको
के.के. मुहम्मदने आगे लिखा—'उग्रपंथी मुस्लिम	पुलिस प्रोटेक्शन मिली हुई है।

कल्याण

रामजन्मभूमि पक्षकी ओरसे कहा गया था कि

उस स्थानपर महाराजा विक्रमादित्यके समयसे एक

मन्दिर था, जिसके कुछ हिस्सेको बाबरकी सेनाके

कमाण्डर मीर बाँकीने नष्ट किया था और मस्जिद

बनानेका प्रयास किया था। उसने उसी मन्दिरके खम्भे

आदि इस्तेमाल किये। ये खम्भे काले कसौटी पत्थरके

थे और उनपर हिन्दू देवी-देवताओंकी आकृतियाँ खुदी

हुई थीं। इस निर्माण-कार्यका बहुत विरोध हुआ और हिन्दुओंने कई बार लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनमें लोगोंकी

जानें भी गयी थीं। अन्तिम लड़ाई १८५५ में लड़ी

गयी थी। इस सबके कारण वहाँ मस्जिदकी मीनार कभी नहीं बन सकी थी और वुजूके लिये पानीका

अपने स्वजन खोये हैं। यह लेख उन सभीको समर्पित है।

(लेखक झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालयके सेवानिवृत्त

िभाग ९४

जो कि मुसलमानोंके लिये मक्काका है। वाल्मीकिरामायण, स्कन्दपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंमें अयोध्या और रामजन्म-भूमिका जिक्र है। वाल्मीकिरामायण बहुत प्राचीन ग्रन्थ

रामजन्मस्थानका महत्त्व हिन्दुओंके लिये वही है,

है। बृहद् धर्मोत्तरपुराणमें अयोध्याको मोक्षदायिनी कहा गया है। सुप्रीम कोर्टने यह भी कहा है कि वाल्मीकिरामायण

और स्कन्दपुराणसहित अन्य धार्मिक ग्रन्थोंके कारण

हिन्दुओंका विश्वास है कि वह जगह राम का जन्मस्थान

है। कोर्टने कहा कि धार्मिक ग्रन्थोंकी बातों को आधारहीन करार नहीं दिया जा सकता।

सुप्रीम कोर्टने यह भी पाया कि रामचरितमानस और आइने अकबरीमें भी अयोध्याको धार्मिक स्थल बताया गया है। साथ ही सुप्रीम कोर्टने अपने फैसलेमें विलियम

फिंच, जोसफ टेफेनथेलर आदि विदेशी यात्रियोंके यात्रा-वृत्तान्तों, ईस्ट इण्डिया गेजेटियर ऑफ वाटर हैमिल्टनसहित

पुराने सरकारी दस्तावेजोंमें मस्जिदको 'मस्जिद जन्मस्थान' कहा गया है।

एक

अन्य ऐतिहासिक साक्ष्योंको भी आधार बनाया। तमाम

इस लेखके अन्तमें यह बताना भी जरूरी है कि रामजन्मभूमिमन्दिरके लिये चले वर्षी पुराने लम्बे संघर्षमें कई लोगोंने अपने प्राणोंकी आहुति भी दी है। कइयोंने

प्रबन्ध भी कभी नहीं हो सका था।

झाँकी देखिय अवधपुरी की

प्रोफेसर हैं।)

(अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप')

देखिय अवधपुरी की। जहँ व्यापी, पावनि चरन-धूरि सिय-पी अन्तरिक्ष नभ में ૄૹ ક્ષુ बढ़ावति शोभा, हाट बाट प्रत्येक ક્ષુ ક્ષ कीजै लोचन तृप्त देखि छबि, रघुनन्दन सँग जनक-लली पुरी सेवत यहि, जिनकी विषयवासना फीकी। ક્ષુ ક્ષ महँ हरि, छन तमोवृत्ति लेत ક્ષુ ક્ષું छटा लसत मन्दिर-अवली सुखद सरजू सरि, ક્ષુ ક્ષુ तरंग उठत सोहत सोइ, सीढ़ी सी जनु मुक्तिथली की॥ ક્ષું ક્કું भ्रमे ब्रज-मण्डल, गली लखी शिव के काशी अवधपुरी ही के सेवन से, जरिन मिटित है जन के जी की॥ ક્ષ ક્ષુ श्रवन सुनत लीला उनही युगल नाम सुख रटत निरंतर, की। ક્ષુ ક્ષુ युगलछिब मुँदत नयन सन, लगी सुरति श्रीअवधधनी की॥ ક્ષ ક્ષ जो पै नीकी। है मातु-सरजूतट, 'सीताराम अवधबासी' यहै रही की॥ लालसा अब,

मनके जीते जीत संख्या ९] मनके जीते जीत (डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत) सन्त कबीरने कहा है-हमारे देखनेके नजरियेमें बहुत अन्तर हो जाता है। जैसे काया खेत किसान मन, पाप पुण्य दो बीज। यदि शरबतसे भरा हुआ आधा गिलास है, तो वह बोया तूने आपना, काया कसके जीव॥ किसीके लिये आधा खाली है, जबकि किसी औरके करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय। लिये वह आधा गिलास भरा हुआ है। जिस व्यक्तिने रोपे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय॥ गिलासको आधा भरा हुआ समझा, उसका दृष्टिकोण अर्थात् शरीर खेत है, मन किसान है, पाप-पुण्य सकारात्मक है और जिसने उस शरबतके गिलासको दो बीज हैं। जो बोयेंगे, वही काटेंगे। ब्रे कर्म कायामें आधा खाली समझा, उसका दुष्टिकोण नकारात्मक है। यानी नकारात्मक दृष्टिकोणवाले व्यक्तिका ध्यान अभावकी जीवको पीड़ा पहुँचाते हैं। यदि कोई बुरा कर्म करके सुख चाहे, तो वह कैसे पायेगा? बबूलका पेड़ लगाकर ओर रहता है, जबिक सकारात्मक दृष्टिकोणवाले व्यक्तिका आमका फल कैसे मिलेगा? ध्यान भावकी ओर रहता है। मन मनुष्यके शरीरका अदृश्य अंग है, जो दिखायी आज हमारे समाजमें परिवार बिखर-से रहे हैं और नहीं देता, किंतु वह शरीरका सबसे शक्तिशाली हिस्सा पारिवारिक शान्ति विलुप्त हो रही है। अक्सर परिवारोंमें है। मनके अन्दर सम्पूर्ण दुनिया समाहित है। मन एक यह देखा जाता है कि परिवारके सदस्य घर-परिवारके ऐसा पर्दा है, जिसपर इच्छाएँ प्रक्षेपित होती हैं। हमारे सदस्योंकी अपेक्षा बाहरके लोगोंसे अधिक घुल-मिलकर शरीरमें इन्द्रियाँ जो भी कार्य करती हैं, वे मनके बातें करते हैं और घर-परिवारके लोगोंके प्रति उदासीन सहयोगसे करती हैं। मनके बिना इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त नहीं बने रहते हैं, उनसे बहुत कम ही बातचीत करते हैं, यही कारण है कि उनमें आपसी विश्वासकी भावना कमजोर कर सकतीं, अत: मनको महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। भारतीय शास्त्रोंमें मनके लिये 'मनस्' शब्दका होती है। प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ है, वे साधन या मगधके राजा सर्वदमनके राज्यमें राजगुरुका स्थान उपक्रम जो किसी घटना, विचार या ज्ञानके लिये मुख्य काफी समयसे खाली था। एक महापण्डित दीर्घलोभने रूपसे जवाबदेह होते हैं। अर्थोंमें अन्तर होते हुए भी राजासे उक्त पदपर स्वयंको नियुक्त करनेका आग्रह चित्त, हृदय, स्वान्त:, हृद् संस्कृतमें मनके पर्यायवाची किया। राजा प्रसन्न हुए, किंतु उन्होंने दीर्घलोभसे एक शब्द कहे गये हैं। मनका महत्त्व इसलिये अधिक हो निवेदन किया कि 'आप एक बार अपने पठित सारे ग्रन्थोंको पुन: पढ़ लें, उसके बाद आपकी नियुक्ति जाता है, क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय और आत्माको आपसमें जोड़नेवाली कड़ी है, जिसकी सहायतासे ज्ञानकी प्राप्ति होगी।' जबतक आप आयेंगे नहीं, तबतक यह स्थान होती है। मन अपने-आपमें निर्जीव तत्त्व है। अर्थात् मन रिक्त ही रहेगा। जड तत्त्व है, जिसमें रंग, स्पर्श, ज्ञान, आनन्द और विद्वान् दीर्घलोभने सारे ग्रन्थोंको ध्यानपूर्वक पढा और राजदरबारमें उपस्थित हो गये। राजाने विनम्रतापूर्वक पीडाकी कोई अनुभृति नहीं होती। जब मन आत्माके संसर्गमें आता है, तभी इसमें अनुभूति होती है। जिस फिरसे उन्हीं ग्रन्थोंको पढ़नेका आग्रह कर दिया। प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त करनेका बाहरी साधन हैं, दीर्घलोभ असमंजसकी स्थितिमें पुनः पढ्नेके लिये चल दिये। नियत अवधि बीतनेपर भी वे राजदरबारमें नहीं उसी प्रकार मन ज्ञानप्राप्तिका आन्तरिक साधन है। हमारा दृष्टिकोण ही हमारे जीवनकी दिशाधारा लौटे, तब राजा स्वयं उनके पास पहुँचे और न आनेका तय करता है। छोटी-छोटी घटनाओंमें दुष्टिभेदसे ही कारण पूछा। पण्डित दीर्घलोभने कहा—'गुरु अन्तरात्मामें

[भाग ९४ रहता है। बाहरके गुरु कामचलाऊभर होते हैं। आप कर लेता है। सन्त कबीरने कहा है— अपने अन्दरके गुरुसे परामर्श लिया करें।' राजा सर्वदमन मन के बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदले सोय। नम्रतापूर्वक दीर्घलोभको अपने साथ ले गये, और उन्हें एक रंग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय॥ राजगुरुके स्थानपर नियुक्त करते हुए बोले—'अब आपने मन मनसा जब जायेगी, तब आवैगी और। शास्त्रोंका सार जान लिया, इसलिये आप दरबारके जब ही निश्चय होयेगा, तब समझेगा ठौर॥ राजगुरुके स्थानको सुशोभित करें।' अर्थात् मन मूर्ख है, लोभी है, चंचल है और चोर हर व्यक्तिमें गुण और अवगुण दोनों होते हैं, है। यदि मन बेलगाम हो जाय तो यह हमें विनाशके लेकिन यदि हमारा चिन्तन गुणोंकी ओर केन्द्रित रहे, तो मार्गपर ले जाता है। इसलिये मनपर नियन्त्रण रखना उसके फायदेके रूपमें हमें शान्ति और प्रसन्नताका परमावश्यक है। मनपर विचारोंका प्रभाव होता है। अत: अनुभव होता है। इसके विपरीत निराशावादी और जैसे हमारे विचार होंगे, वैसा ही हमारा मन भी होगा। अवगुणवादी लोग अपने चारों ओर अभावों और दोषोंके मन भूमिमें रोपे गये विचार नामक बीजकी किस्म ही है, दर्शन करते रहते हैं, जिसके कारण वे अपने जीवनमें जो किसीके बुरे एवं अच्छे व्यक्तित्वका निर्धारण करती शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव कर ही नहीं पाते। जो है। मन और मनकी इच्छाएँ जब मिट जायँगी, तब व्यक्ति अभावको भाव, विषादको हर्ष तथा दु:खको जीवन-मुक्तिकी विलक्षण स्थिति प्राप्त होगी। जैसे ही सुखमें बदलनेकी कला जानता है, उसी व्यक्तिका जीवन मन स्थिर हुआ, वैसे ही शान्तिकी प्राप्ति होगी। सुखी और दुखी दोनों तरहके लोगोंके लिये अपनी सफल एवं सार्थक है। दुखी व्यक्ति अपनी कल्पनाओंके सहारे छोटेसे दृष्टिको व्यापक बनाना आवश्यक है। इससे जहाँ दु:खको भी बहुत बड़ा रूप दे देता है। वह स्वयंको सुखका अभिमान मिट जाता है, तो वहीं दु:खका भाव संसारका सबसे दुखी और अभागा समझने लगता है, और तनाव भी समाप्त हो जाता है। अपनी वास्तविक पर यह सब मात्र भ्रम होता है। सच्चाई यह है कि स्थितिको भूलकर हम जब भी औरोंसे अपनी तुलना उससे भी अधिक दुखी और समस्याग्रस्त लोगोंसे करनेका प्रयत्न करेंगे, हम अपने कर्तव्योंसे तथा कर्म यह संसार भरा हुआ है। कुछ लोग अपने परिवारके करनेसे विमुख ही होंगे। एक सामान्य प्रवृत्ति यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयंको अधिक दुखी समझता है। इस वातावरण, व्यवसाय एवं नौकरीसे व्यर्थ ही असन्तुष्ट और दुखी रहते हैं। प्राय: उन्हें दूसरे परिवारोंमें, मनोवृत्तिमें सुधार और परिष्कार करना चाहिये। इन व्यवसायमें, नौकरीमें अधिक सुख-शान्ति, वैभव, जटिल और विषम स्थितियोंमें हमारी आध्यात्मिक उन्नतिके दर्शन होते हैं, पर जब वे उनकी अन्तरंग साधना और उपासना ही हमारे सोये हुए मनोबल और स्थितिसे परिचित होते हैं, तो स्वयंके अज्ञानका बोध आत्मबलको जगा सकती है, जिससे दु:ख और भयकी होता है। ग्रन्थियाँ नष्ट हो सकती हैं। प्राचीन कहावत है—'मनके हारे हार है, मनके ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। जीते जीत।' अत: जब व्यक्ति अपने मनमें यह सोच आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ लेता है कि वह अमुक काम नहीं कर सकता तो वह बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही भोग-धन, अपने अन्दर नकारात्मक गुण पैदा कर लेता है। और मान, यश, आराम, अधिकार आदिमें सुखकी प्रतीति जब व्यक्ति यह सोच लेता है कि वह अमुक काम कर होती है। वास्तवमें तो इनसे दु:ख ही उत्पन्न होते हैं, Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH OVE BY Avinash/Sharahan | MADE WITH OVE BY Avinash/Sharahan | MADE WITH OVE BY Avinash/Sharahan | Avinas संख्या ९] भज मन रामचरन सुखदाई देते। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' अर्थात् भोगसे अशान्ति होती हैं। कभी-कभी अपने अहंकारवश मानव अपना प्राप्त होती है और वह जीवको जबरदस्ती नरकानलमें आचरण राक्षसी प्रवृत्तिकी ओर ले जाता है। ऐसेमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है, जबिक त्यागसे जीवनमें रामनाम उस दशाननरूपी अहंकारी रावणका नाश करता शान्ति मिलती है और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप है और मनुष्यत्वकी ओर प्रवृत्त करता है। यही रामनाम जपमें निर्गुण रूप है और रामकथामें सगुण स्वरूप, जो परमात्माका साक्षात्कार करता है। आज मनुष्यकी अधीरता प्रबल हो रही है। वह दोनों भूमिकाओंमें केवल लोकरक्षक और लोककल्याणकी सब कुछ तुरंत पा लेना चाहता है। उसे हर कर्मका भूमिका निभाता है। रामका जीवन इसी लोककल्याणरूप ऐसा फल चाहिये, जो उसकी कामनाओंको पूरा मुख्य कार्यके लिये तत्पर है, जिसमें उन्हें सभीके करनेमें सहायक हो। उसके पास दूसरोंके लिये सोचनेका सहयोगकी जरूरत थी। इसी कार्यके लिये रामकथाके समय नहीं है। दूसरोंके लिये वह तभी सोचता है, सभी मानव-पात्र और मानवेतर चरित्र इस कथा-प्रवाहमें यदि कोई स्वहित सिद्ध होता हो। दृष्टिका यह अपना योगदान प्रदान करते हैं। रामकथा आजकी विषम परिस्थितियोंका प्रभावी संकुचन धर्मसे दूर होते जानेका परिणाम है। आज धर्मस्थलोंपर भीड़ है, पर उन लोगोंकी जो धर्मचिन्तनसे समाधान करती है। इसके नीतिगत मानवीय सन्देशोंका विहीन हैं। धर्म मूलत: चिन्तन है, जो कर्मोंसे प्रकट प्रसार, प्रचार एवं अनुपालन परमावश्यक है। मानवीय होता है। चिन्तनविहीन कर्म बस आडम्बर बनकर मूल्यका अर्थ है लोकहित या जिसमें सबका हित रह जाते हैं। धर्म और अध्यात्मसे जुड़ना मन, वचन समाहित हो। तुलसीका मानस हमें बताता है कि

और कर्मका समन्वित प्रयास है। इससे ही वर्तमानसे सर्वमंगलकी भावनासे अनुप्राणित होकर ही हम अपनी आगे देख पानेकी योग्यता विकसित होती है। समाजका भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिमें सफल हो सकते हैं। हित इसीमें है। अन्तमें पूज्य पिताजी डॉ० श्रीगणेशदत्त सारस्वतकी अक्सर लोग अतीतकी स्मृतियोंमें खोये रहते हैं या निम्न काव्य-पंक्तियोंका स्मरण करते हुए अपनी लेखनीको भविष्यके सपने बुनते रहते हैं और इसमें वर्तमान उपेक्षित विराम देता हूँ। होता है। जबिक होना यह चाहिये कि हम अतीतकी विष घृणाका न घोलें निवेदन यही, बोल कड़वे न बोलें निवेदन यही।

गलतियोंसे वर्तमानमें सबक लेकर अपने भविष्यको

सुन्दर बनायें।

प्रत्येक मानवमें अच्छी-बुरी दोनों प्रकारकी भावनाएँ दूसरोंको कहें बादमें हम बुरा, पहले अपनेको तौलें निवेदन यही।।

भज मन रामचरन सुखदाई

आग घरमें लगी है बुझायें उसे, बन प्रभंजन न डोलें निवेदन यही॥

आपके हैं सभी गैर कोई नहीं, निज हृदय को टटोलें निवेदन यही।

भज मन रामचरन सुखदाई॥

जिहि चरननसे निकसी सुरसरि संकर जटा समाई। जटासंकरी नाम पत्त्वो है, त्रिभुवन तारन आई॥

जिन चरनन की चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई। सोइ चरन केवट धोइ लीने तब हरि नाव चलाई॥

सोइ चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई। सोइ चरन गौतमऋषि-नारी परिस परमपद पाई॥

दंडकबन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई। सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक मृगा सँग धाई।।

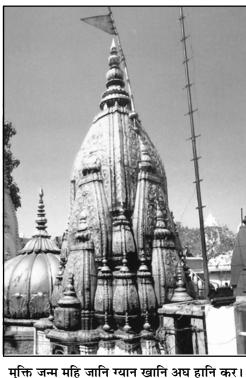
कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल तिन जय छत्र फिराई। रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर परसत लंका पाई॥

सिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेस सहस मुख गाई। तुलसिदास मारुत-सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई॥

तीर्थ-चिन्तन-

वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन

(प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज')



जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

जिज्ञास्—'सो कासी'का क्या अभिप्राय है? 'सेइअ' तथा 'कस न'से क्या ध्वनित होता है?

किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भमें ही 'सोरठा'के प्रयोगका क्या तात्पर्य है?

समाधान—'सो' शब्दको खडी बोलीमें 'वह' कहेंगे। 'सो' अर्थात् 'वह' निश्चयवाचक सर्वनाम है। यह निश्चयात्मक होनेके साथ-साथ विप्रकृष्ट है अर्थात्

दूरवर्तीके लिये प्रयुक्त है; इसके अतिरिक्त परोक्षसूचक भी

है। 'सो कासी'से ध्वनित होता है कि वह काशी आधिभौतिकके अतिरिक्त आध्यात्मिक भी है।

'सेइअ' शब्द संस्कृतके 'सेवस्व' तत्समका अपभ्रंश रूप है। 'सेवन करो'—यह अनुज्ञा-अर्थमें लोट लकार है। यह आदेशात्मक क्रिया है—'काशीका सेवन करो।'

'कस न' यह मार्मिक प्रयोग है। भैया! ऐसी

मानव-तनुधारियोंके लिये उन्हें विषाद है, कष्ट है, पीड़ा

है, जो काशीका सेवन नहीं करते। क्यों ? उत्तर है-यह अविमुक्त क्षेत्र है, इसका सेवन करो, करते रहो-

यत्र संनिहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्। तत् क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥

(मत्स्यपु० १८१।१५) यहाँ देवाधिदेव महादेवकी संनिधि है—समीपता

है, नित्यस्थिति है। उन्होंने इस क्षेत्रका न कभी त्याग

किया है और न करेंगे। इसी कारण इस काशीको 'अविमुक्त' क्षेत्र कहा जाता है।

योगियाज्ञवल्क्य कहते हैं-अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म

व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेत्, एवमेवैतद् याज्ञवल्क्यः। (जाबालोपनिषद् १)

भाव यह कि काशीमें प्राण-त्याग करनेपर भगवान् रुद्र जीवको तारक ब्रह्म 'रां रामाय नमः'—इस षडक्षर महामन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे प्राणी अमृत होकर

मुक्त हो जाता है। इसलिये अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-का

सेवन अवश्य करें। इसका त्याग कभी न करें। शिवपुराणकी 'ज्ञान-संहिता'में कहा गया है-

कर्मणां कर्षणात् सा वै काशीति परिकथ्यते। (88188)

करनेके कारण वह 'काशी' नामसे पुकारी जाती है।' इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम। सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मीक्षस्य सर्वदा॥

(मत्स्यपु० १८०। ४७) 'यह वाराणसी मेरा अत्यन्त गुप्त क्षेत्र है और समस्त प्राणियोंके लिये सर्वदा मुक्तिका कारण है।'

'समस्त शुभाशुभ कर्मोंका कर्षण अर्थात् संशोधन

'इस अविमुक्त क्षेत्रमें निष्कामी अथवा सकामी मनुष्य ही नहीं, अपितु तिर्यक् प्राणी, पशु, पक्षी भी प्राण

काशीका सेवन क्यों नहीं करते? यहाँ महाकविका आन्तरिक खेद प्रकट हुआ है। कवि मर्माहत हैं और ऐसे त्यागकर मेरे लोकमें प्रशंसित होते हैं-

संख्या ९] वाराणसी—एक	तात्त्विक विवेचन ३३
***********************************	*************************************
अकामो वा सकामो वा ह्यापि तिर्यग्गतोऽपि वा।	आपके सामने काशीके आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक
अविमुक्त त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते॥	दो रूप आते हैं।
(मत्स्यपु० १८०। २२)	पिण्ड-ब्रह्माण्ड-न्यायेन श्रीअयोध्याजी मस्तक और
उपर्युक्त कथनकी सम्पुष्टि 'कूर्मपुराण'के निम्न	काशीजी मध्य स्थान है। मध्य स्थानसे 'हृदय' रूप अर्थ
श्लोकसे भी होती है—	गृहीत होता है। किसी-किसी आचार्यके मतसे आज्ञाचक्र
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्तेऽक्षय्यमीश्वरः।	अथवा भ्रू-मध्यको ही काशीकी संज्ञा दी गयी है।
x x x	जाबालोपनिषद्के अन्तर्गत पिण्ड—देहमें सभी
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तथैव ह्यविमुक्तकम्॥	तीर्थोंका निरूपण हुआ है। तदनुसार नासिका और भू-
(३१।६०-६१)	मध्यके बीच काशीकी स्थिति बतलायी गयी है।
'जहाँ साक्षात् परमेश्वर महादेव प्राणीको मरण-	श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्में इस विषयको सुस्पष्ट
कालमें अक्षय तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं, उस	किया गया है कि अविमुक्तक्षेत्रमें जिन्हें षडक्षर महामन्त्र
काशीको इसी कारण 'अविमुक्त' क्षेत्र कहा जाता है।'	(रां रामाय नमः)-का उपदेश प्राप्त होता है, वे
भूतभावन भगवान् भूतनाथने दुश्चर तपश्चर्याके	मुक्त हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामका महादेवजीको
पश्चात् भगवान् श्रीरामसे काशीमें प्राणियोंकी मुक्तिके	वरदान है—
लिये वरदान प्राप्त किया। 'अध्यात्मरामायण'में स्वयं	अविमुक्ते तव क्षेत्रे'''''''।
महेश्वरका यह वचन ध्यान देनेयोग्य है—	× × ×
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।	ये लभन्ते षडक्षरम्।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥	जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥
(६।१५।६२)	(रा० ता० उ० ५,७)
'प्रभो ! मैं आपका नाम जपता हुआ कृतार्थ होकर	'शंकर! आपके अविमुक्तक्षेत्र काशीमें जिन्हें षडक्षर
भवानीके साथ काशीमें रात-दिन निवास करता हूँ और	मन्त्रका उपदेश प्राप्त हो जाता है, वे जीते हुए मन्त्रसिद्ध
यहाँ मरनेवालेकी मुक्तिके लिये आपके 'राम'-नामरूप	हो जाते हैं और मरनेपर मुक्त होकर मुझे प्राप्त होते हैं।'
मन्त्रका उपदेश करता रहता हूँ।'	जाबालोपनिषद्के अनुसार यह अविमुक्तक्षेत्र वरणा
किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भमें 'सोरठा' रखनेका	और नाशीके मध्यमें प्रतिष्ठित है। 'वरणा'का सरलार्थ
अभिप्राय यह है कि बालकाण्डमें श्रीगणेशजीकी वन्दनामें	होता है—'सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयति इति
प्रथम 'सोरठा' छन्द ही है। यह छन्द बल-विद्या-	वरणा।' अर्थात् जो इन्द्रियोंद्वारा किये गये सम्पूर्ण
ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये ही संकेतित है। यह दोहेका	दोषोंसे बचा लेती है, वह 'वरणा' (नदी) है और
विपरीत रूप है। दोहाका प्रथम चरण तेरह मात्राओंका	'नाशी का अर्थ है—' सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति
होता है और क्रमशः द्वितीय चरणमें क्षयको प्राप्त होता	इति नाशी।' अर्थात् जो इन्द्रियादिकोंसे किये गये पाप-
हुआ वह केवल ग्यारह मात्राओंका रह जाता है। इसमें	समूहोंको नष्ट कर देती है, वह 'नाशी' अर्थात् प्रचलित
क्रमिक ह्रास है, पर सोरठा क्रमशः वृद्धिकी ओर	'असी' नदी है। इन दोनों नदियोंके संगमपर काशी
खिसकता चलता है। इसके प्रथम चरणमें ग्यारह मात्राएँ	अवस्थित है।
और द्वितीय चरणमें वृद्धिपरक तेरह मात्राएँ होती हैं।	अब हम रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डान्तर्गत
दोनों ही मात्रावृत्त हैं। सोरठा देकर कविने उत्तरोत्तर	सोरठापर थोड़ा विचार कर लें—
भगवत्कृपाकी प्राप्तिके लिये ज्ञान-बुद्धि-वृद्धिकी कामना	मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
की है।	जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

आधिभौतिक काशी— यहाँ 'कस न'—प्रश्नार्थक है। तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय तो गोस्वामी इसकी सीमा इस प्रकार निर्धारित है-तुलसीदासजीका यह समुचा सोरठा जाबालोपनिषद् एवं दक्षिणोत्तरदिग्भागे कृत्वासिं वरुणां सुरा:। श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्के निम्नलिखित पाँचों वाक्योंपर क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे तं देहलीविनायकम्॥ ही आधारित माना जा सकता है-'उत्तरमें वरुणा नदी, दक्षिणमें असी नदी, पश्चिममें १-इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में शिवजीसे देहली-विनायक तथा पूर्व दिशामें गंगाजी।' षडक्षर तारक-मन्त्रका उपदेश पाकर प्राणी मुक्त हो जाता इस विस्तीर्ण धरापर काशी एक विलक्षण पुरी है। है—'जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते।' इसके चार नाम पुराणप्रसिद्ध हैं-काशी, वाराणसी, २-यह काशी ज्ञान-तत्त्वका उपदेश करती है-अविमुक्त और अन्नपूर्णाक्षेत्र। काशीको ही काशिका अर्थात् प्रकाशिका कहते हैं। 'विमुक्तं ज्ञानमाचष्टे।' ३-काशीवासी सभी (कायिक-वाचिक-मानसिक) ब्रह्मपुराणमें वर्णन आता है—'पञ्चक्रोशप्रकीर्णं पापोंसे तर जाते हैं—'स पाप्मानं तरित।' (रामोत्तरतापिनी०) च क्षेत्रम्'—अर्थात् यह काशी पाँच कोसमें फैली ४-यहाँ रुद्र तारक ब्रह्म—रामनामका उपदेश करते हई है। हैं—**'रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचघ्टे'** (जाबाल०) विनय-पत्रिकामें काशीकी एक लम्बी स्तुति है-५-इसलिये अविमुक्त (काशी)-का सेवन करना सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी। चाहिये—'तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत।' समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल सुमंगल रासी॥ गोस्वामीजीके उपर्युक्त सोरठेमें निहित इन्हीं उपनिषद्-वाक्योंका अभिप्रेतार्थ देखिये— कलियुगमें यह काशी सकलाभीष्टोंको पूर्ण करनेवाली (१) मुक्ति जन्म महि जानि। कामधेनु है। अन्तमें लिखा है— (२) ग्यान खानि। तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी। (३) अघहानि कर। (२२।९) (४) जहँ बस संभु भवानि और 'सुपासी' शब्दका अभिप्रेत अर्थ है—यदि सर्वथा (५) सो कासी सेइअ कस न। मुक्त होना चाहते हो तो। अन्य क्षेत्रोंमें किया हुआ पाप विनय-पत्रिकामें गोस्वामीजीकी उक्ति है-काशी आते ही छूट जाता है। काशीमें किया पाप अन्तर्गृही करनेपर धुल जाता है, पर अन्तर्गृहमें किया जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान। हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। काशीमें किये गये सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहि समान॥ पापका दण्ड भी बड़ा कड़ा होता है। यहाँ यमराजका (313) 'सबिह समान'में तिर्यग्-योनिगत पशु-पक्षी-कीट-प्रशासन नहीं है। यहाँके प्रशासक दण्डनायक भैरवजी पतंग—सभी समाविष्ट हैं। अन्यत्र कहा गया है— हैं। भैरवी यातनाएँ मृत्युकालमें तारकमन्त्र-प्रदानसे पूर्व कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः। ही पूरी हो जाती हैं। काशीके तीथींमें मणिकर्णिका सर्वश्रेष्ठ है। यहीं महादेवजीके कानकी मणि गिरी थी। मण्डुकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति॥ 'स्थलपर अथवा जलमें विचरनेवाले कीट, पतंग, भगवान् विष्णुके सुदर्शनद्वारा खोदी गयी चतुष्पुष्करिणी मच्छर, वृक्ष, मेढक, मछली और कृमि आदि जितने भी यही मणिकर्णिका है। इस तीर्थका प्रभाव अनिर्वचनीय जीव हैं, वे काशीमें शरीरको त्यागकर भगवान् शिवको है। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें काशीके अलौकिक प्रासिंगर्ह्मां Discord Server https://dsc.gg/dhartaa र्व्याप्तिक्षिक्षित्र मिस्ति रहे BY Avinash/Sha

संख्या ९] वाराणसी—एक	तात्त्विक विवेचन ३५
**************************************	\$
भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरध:स्थापि या	मनके लिये यह भ्रू-मध्य या द्विदल कमल एक सुदृढ़
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः।	खूँटा है। यह छलाँग लगानेवाला बछड़ा (मन) तो यहीं
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते	आकर बँध सकता है—अन्यत्र नहीं।
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥	अमृत तथा दिव्य पुरुषकी प्राप्तिके लिये दोनों
(१।१)	भौंहोंके बीच अपने प्राणको अच्छी तरह स्थापित करना
'जो काशी नगरी भूतलमें विराजमान रहनेपर भी	होता है—
स्वयं भूमि नहीं है, अधोभागमें रहनेपर भी स्वर्गसे भी	भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
ऊँची है, भूतलकी सीमाओंसे आबद्ध होनेपर भी	स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥
मुक्तिदात्री है, जहाँ मरनेवाले जीवमात्र [आप-से-आप]	(गीता८।१०)
अमृतपदके अधिकारी हो जाते हैं और देवगण भी सदा	विचारणीय तो यह है कि 'सो कासी सेइअ
गंगा-तटपर रहकर जिसका सेवन करते हैं, भगवान्	कस न'से गोस्वामीजीका नासिका-भ्रू-मध्यस्थित
विश्वनाथकी वह राजधानी सर्वदा विघ्न-बाधाओंसे	काशीकी ओर संकेत होता तो वे आजीवन असी-
जगत्की रक्षा करती रहे।'	गंगातटपर निवासकर काशी और विश्वेश्वर-लिंगकी
इतना ही नहीं— 'काश्यां मरणान्मुक्ति' यह सूक्ति	आराधना क्यों करते? अच्छा होता, वे अष्टांगयोगकी
सुप्रसिद्ध है। मृत्युकाल उपस्थित होते ही भगवान् भूतभावन	आठों सीढ़ियोंको यौगिक प्रक्रियासे चढ़कर पार करते,
विश्वनाथ मुमूर्षु प्राणीको अपनी गोदमें लेकर उसके दक्षिण	किंतु यौगिक प्रक्रियापर इन सन्तने कहीं भी
कर्णमें तारक (रां रामाय नमः अथवा 'राम') मन्त्रका	बल नहीं दिया है। 'सो कासी'से यदि आध्यात्मिक
उपदेश करने लगते हैं, उस समय माता अन्नपूर्णा वहीं	काशीकी ओर ही अवधारणापूर्वक संकेत होता तो
उपस्थित होकर कस्तूरिका-गन्धसे सुवासित अपने	'मानस'की अधोलिखित अर्धालीकी क्या कीमत रह
श्वेतांचलकी श्रेष्ठ वायुसे उसकी उत्क्रमण-कालिक	जायगी ?—
व्याकुलता (छटपटाहट)-को मिटाने लगती हैं—	कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
अनिलो मृगनाभिरेणुगन्धिरधिकाशिः प्रणवोपदेशकाले।	(रा०च०मा० १। ११९ । १)
हरते भवजं श्रमं नराणां हरवामार्द्धकुचोत्तरीयजन्मा॥	यहाँ तो भगवन्नाम-बल ('राम'-नाम)-की महिमा
भू-मध्यस्थित आध्यात्मिक काशी—	सुस्पष्टतः प्रकट होती है। मरनेवाले सभी जीव-जन्तु
आध्यात्मिक काशी भ्रू-मध्य और नासिकाके बीच	विशोक हो जाते हैं।
है। यहाँ योग-साधकोंको ध्यान करते समय ज्योति-	गोस्वामीजीके पूर्ववर्ती कट्टर कबीर भी कह
दर्शन होते हैं। यह काशी जन-साधारण-गम्य नहीं,	गये हैं—
इसके लिये ऊर्ध्वरेता होना आवश्यक है। आद्य शंकराचार्यने	'जो कबिरा कासी मरै रामिह कौन निहोर।'
अपनी 'सौन्दर्य-लहरी' (९)-में लिखा है—	उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट ध्वनित होता है कि काशी-
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं	मरणसे मुक्ति स्वतः करतलगत हो जाती है।
सहस्रारे पद्मे सह रहिस पत्या विहरसे।	आध्यात्मिक काशी योगियों-ज्ञानियोंके लिये और
इसी एकान्तमें—आज्ञाचक्रमें, योगियोंके सहस्रदल	आधिभौतिक काशी जन-साधारणके लिये गौ-घाट है,
कमलमें वह कुल-कुण्डलिनी अपने पति सदाशिवसे	जहाँ सभी जल पीकर परितृप्त होते हैं। 'सो कासी'
लिपटकर(अर्धनारीस्वरूपा) विहार करती रहती है।	अर्थात् वह काशी सभीके लिये नित्य सेवनीय है। •••

सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी संत-चरित-(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) मानसके मर्मके सर्वात्मना व्याख्याता व्यासका नाम चमत्कार ही तो था। यह घटना इस प्रकार है। था पण्डित रामगुलाम द्विवेदी। ये मीरजापुरके निवासी रामगुलामजी रामकथा सुनने जाया करते थे और थे। जिस समयमें इनका जन्म हुआ था, आजसे सौ-पश्चात् अपना काम भी निपटा दिया करते थे। एक दिन सवा सौ साल पूर्व, मीरजापुर एक बड़ा व्यापारिक नगर ये कथा सुननेमें इतने व्यस्त हो गये कि समयसे हुण्डी था। जहाँ गंगाके जलमार्गसे बड़ी नौकाओंके द्वारा पटना पहुँचानेके लिये जा नहीं सके। इसपर इन्हें बहुत दु:ख तथा कलकत्तासे अन्न, लोहा तथा पत्थर आदिका प्रभूत हुआ और अपने मालिकसे क्षमा माँगनेके लिये जा

व्यापार होता था। मीरजापुरके मुहल्ला गणेशगंजमें पं० रामगुलाम द्विवेदी रामायणीका निवास था। ये गौतम गोत्रीय कांचनी द्विवेदी सरयुपारीण ब्राह्मण थे। द्विवेदीजीका वृत्त जनश्रुतिके आधारपर ही किसी लिखित प्रमाणके अभावमें यहाँ दिया जा रहा है। इनका जन्म मीरजापुरमें ही विक्रम संवत् १८३० (१७७३ ईस्वी)-में हुआ था और निधन वि०सं० १९०८ (१८५१ ईस्वी)-में माना जाता है। इनकी जन्मतिथि बसन्त पंचमी सर्वसम्मत है। निधन संवतुका उल्लेख ज्ञानपुरके प्रसिद्ध विद्वान् पं० महावीरप्रसाद

मालवीय वैद्यजीने आग्रहपूर्वक १९०८ विक्रम बतलाया है, जो सर्वमान्य है। इस प्रकार रामगुलामजीका अधिकतम द्विवेदीजी मीरजापुरमें ही किसी महाजनके यहाँ जमादारी करते थे, उन दिनों बैंकोंका अभाव था। महाजनोंमें लेन-देनके लिये हुण्डी-पूर्जेका व्यवहार था। हुण्डीकी अदायगी नियत तिथिपर चार बजे दिनके पूर्व हो जाती थी। उस समय नोटोंका भी अभाव था।

जीवन ७८ वर्षका स्वीकृत होता है। व्यवहारमें रुपया ही चलता था और इसीका पहुँचानेका काम जमादार करते थे, जो विशेषकर ब्राह्मण तथा क्षत्रिय हुआ करते थे। यदि चार बजेतक ऋणोंके पैसे जमा नहीं हुए तो वह महाजन दिवालिया हो जाता था। जमादारका काम रामगुलामजी करते थे। नौकरी तो थी ही। एक दिन इस काममें असावधानी हो गयी और सम्भव था कि इस कारण इन्हें अपनी जीविकासे हाथ धोना पड़ता। भगवान्की अकृत्रिम कृपासे ये बाल-बाल बच गये और जीवनकी नौका डूबने नहीं पायी। यह

उससे भी अपनी गलतीकी बात कही। महाजनने कहा— द्विवेदीजी, आप भूल कर रहे हैं। चार बजेसे पहले ही रुपया पहुँचाकर आप मुझसे भरपाई लिखा ले गये हैं। उसने वह रजिस्टर भी दिखलाया, जिसमें उचित समयपर रुपया जमा करनेका स्पष्ट उल्लेख था। इस आश्चर्यजनक घटनाका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने जमादारीका काम एकदम छोड़ दिया, पूरे विरक्त हो गये और

पहुँचे। महाजनने कहा—दु:ख करनेकी कोई बात नहीं

है। आप भूल रहे हैं। आप मेरे पाससे तोडे ले गये थे

और भरपाई लिखाकर ले आये हैं। महाराजने भरपाईका

वह पूर्जा भी दिखाया, जो इस घटनाकी सत्यताका पूरा

प्रमाण था। द्विवेदीजीको इतनेसे सन्तोष नहीं हुआ। ये

दौड़े-दौड़े भरपाई देनेवाले महाजनके पास भी गये और

रामचरितमानसकी कथा सुनानेका व्यासका काम करने

लगे। अपना पूरा समय रामचर्चामें बिताते थे। लोंहदी

महावीरके मन्दिरपर और अन्य स्थानोंपर इनकी कथा

सुननेवाले अनेक वृद्ध व्यक्ति मीरजापुरमें कभी विद्यमान

िभाग ९४

थे। चढ़ावेके प्रसंगमें ये कहा करते थे—भैया, मैं तो भगवान् सच्चिदानन्द रामचन्द्रका भक्त हूँ। मेरी नाव छोटी है। मुझे अधिक चढ़ावा नहीं चाहिये। अधिक चढ़ावा तो भागवतके पण्डितोंको फबती है। द्विवेदीजीको राज-सम्मान—रामकी भक्तिसे पूर्ण हृदयवाला भक्त रामदरबारका ही सेवक होता है। उनसे ही याचना करता है, दूसरोंसे याचना करना उसे नहीं सुहाता—यही भावना थी रामभक्त रामगुलामजीकी।

वह किसी राजाके पास नहीं जाता, प्रत्युत राजा ही

उसके पास जाकर उसका भरपूर सम्मान करता है।

संख्या ९] सिद्ध हनुमद्धक्त पं०	श्रीरामगुलाम द्विवेदी ३७
***********************	*********************************
यह घटना उनके ही जीवनमें घटी थी, जो इस प्रकार	तपस्यासे मानसार्थकी स्फूर्ति —प्रतिदिन तीन
है—कहा जाता है कि १९०० वि०सं० (१८४३	घंटाके हिसाबसे २२ दिनोंतक नामके महत्त्वका प्रतिपादन
ईस्वी)-में रीवाँके महाराज भगवती विन्ध्यवासिनी देवीके	करना एक असाधारण-सी घटना है। परंतु इसके
दर्शनार्थ विन्ध्याचल आये। वे रामगुलामजीको जानते	औचित्यका रहस्य व्यासजीकी अटूट तपस्यापर आधारित
थे। उनकी कीर्ति सुन रखी थी। अपने कर्मचारीको	है। पण्डित रामगुलामजी हनुमान्जीके नैष्ठिक भक्त
व्यासजीको बुलानेको मीरजापुर भेजा। बुलानेपर	थे, जो नियमतः उनका दर्शन एवं पूजन प्रतिदिन
द्विवेदीजीने एक पत्र लिखकर कर्मचारीको लौटा दिया।	किया करते थे। लोंहदी महावीरका दर्शन प्रतिदिन
वह पद्यबद्ध पत्र इस प्रकार था—	किया करते थे। एक दिन वहाँ जानेका दिनमें अवकाश
असि कोऊ करत हँसी।	नहीं मिला। वर्षाकी ऋतु थी। अँधेरी रातमें वह
पर्वत शिला कंज बरु जामै, बरु विस स्रवै ससी।	मार्गमें पड़नेवाली नदीको पारकर जानेके लिये उद्यत
राम छाड़ि और जो जाँचौं, तो मुँह लाओं मसी।	हुए। उस दिन नदी बाढ़पर थी और उसमें उतरना
इस मार्मिक पत्रको बाँचकर रीवाँ–नरेश गद्गद हो	अपने प्राणोंको संकटमें डालना था, परंतु द्विवेदीजी
गये। वे स्वयं द्विवेदीजीके घर हाथीपर चढ़कर आये।	दर्शन करनेकी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ थे। जब ये
उनके सत्संगसे लाभ उठाया। दक्षिणामें उन्होंने एक	जलमें उतरे, तब एक सज्जनने इन्हें रोका। इन्होंने
कीमती दुशाला तथा पाँच अशर्फियाँ दीं।	कहा कि मैं हनुमान्जीका दर्शन करने जा रहा हूँ,
चित्रकूटकी भी एक ऐसी ही घटना है। एक बार	रुकूँगा नहीं। इसपर उस व्यक्तिने अपनेको हनुमान्के
रीवाँ-नरेश चित्रकूट गये। संयोगसे द्विवेदीजी भी वहीं	रूपमें प्रकट किया और घर लौट जानेको कहा।
विराजमान थे। चित्रकूटको तीर्थ समझकर उन्होंने पं०	श्रीसमन्वयीजी (जो मीरजापुरके प्रतिष्ठित स्वतन्त्रता
रामगुलामजीको बुलानेके लिये लिख भेजा—	सेनानी तथा जननेता थे)-की माता श्रीमती मुकुंदी
चित्रकूट रघुनंदन छाये । समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥	देवीजी तत्कालीन वृद्धजनोंके मुँहसे सुनी बात कहती
स्पष्ट ही यह आनेके लिये निमन्त्रण था, परंतु	थीं कि द्विवेदीजीके दर्शनार्थ नदीमें उतरनेके समय
इसपर द्विवेदीजीने उत्तर लिख भेजा—	बिजुली कड़की और आकाशमें हनुमानजी प्रकट हो
सकल मुनिन्ह के आश्रमहिं जाइ जाइ सुख दीन्ह॥	गये। पार जानेसे इन्हें मना किया और घरपर ही
यह समुचित उत्तर पाकर राजा द्विवेदीजीसे मिलनेके	हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापितकर और उसीके पूजन और
लिये स्वयं आये और 'नामवन्दना' सुननेके अभिप्रायसे	दर्शनके लिये आदेश दिया। व्यासजीने इस दिव्य
उन्होंने कहा—	दर्शनको आदेश मान लिया। घरपर हनुमान्जीकी मूर्ति
बदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।	स्थापित की और इसीके अर्चन-पूजनमें ये अब निरत
'नामवन्दना' के विषयमें रीवाँ–नरेशके आग्रहको	रहने लगे। इनके द्वारा स्थापित हनुमान्जीकी मूर्ति,
द्विवेदीजीने सहर्ष स्वीकार किया और इस पवित्र कार्यके	इनके खड़ाऊँ और कुछ अन्य मूर्तियाँ गणेशगंजके
लिये तीन बजेसे छ: बजे दिनका समय निर्धारित किया	इनके आवासपर आज भी विद्यमान हैं, जिनका विधिवत्
गया। कहते हैं कि यह सत्संग २२ दिनोंतक चलता	पूजन होता है।
रहा। २३वें दिन राजा साहबने कहा कि महाराज, अब	्र श्रीरामचरितमानसकी चौपाइयोंमें व्यासजीको नये-
इस प्रसंगको समाप्त किया जाय। मैं गृहस्थ हूँ, फलत:	नये अर्थ सूझने लगे। इसी कारण इनकी कथाओंमें
मेरे लिये इतना ही बहुत है।	एक ही विषयपर भिन्न-भिन्न विचार विभिन्न अवसरोंपर

प्रगट होते थे। व्यासजीकी कथा बड़ी रोचक तथा है। इस रामायणका अध्ययन पण्डित रामगुलामजीकी सरस गम्भीर होती थी। रोचकताका रसास्वादन तो साधारण सुबोध रचनाशक्तिका सद्यः परिचायक है। कविता बड़ी श्रोता ही किया करते थे। ऐसे मेधावी श्रोताओंमें सुन्दर है, अभिराम तथा रस-स्निग्ध है। दैन्यके प्रकाशक मुंशी छक्कनलालजी प्रधान थे और सभा-स्थलपर भाव बड़े आकर्षक एवं आवर्जक हैं। कुछ उदाहरणोंसे इनके आनेके बाद ही कथाका आरम्भ होता था। ये इनकी विशेषताका परिचय यहाँ उपन्यस्त है। मुंशीजी रामायणके बडे मर्मज्ञ थे और इन्होंने जाके वामभाग में बिराजै मिथिलेस सुता, रामचरितमानसके पाठकी एक शुद्ध प्रति छपवायी सहित सनेह सदा छवि की छटा छई। थी, जिसका आदर मानसके गम्भीर गवेषणा करनेवाले दाहिने रहत जाके लखन अनूप रूप, आज भी करते हैं। नख-सिख नीके हेम उपमा न हौं दई। पं० रामगुलाम द्विवेदीजीका मानसका हस्तलेख जाके अंग अंग पै अनंग कोटि वारियत, बडा प्रामाणिक माना जाता है। इनकी प्रतिके धरे धनु बान पानि विश्व विजई नई। अरण्यकाण्डकी पुष्पिकामें कहा गया है—'लिखितं बदत गुलाम राम दया करि दीजै राम, रामगुलामेन स्वात्मार्थ परार्थमिति।' इस लिपिका मेरे मन बसै सोई मूरति कृपा मई॥ कवि गंगाजीसे प्रार्थना कर रहा है कि माता, ऐसी

समय १८७५ संवत् दिया गया है। १८७५ वि०-१८१८ ई०। यह हस्तलेख व्यासजीके ४५ सालके वयमें तैयार किया गया था। काशिराज संस्करणवाले रामचरितमानसकी प्रस्तावनाके पृष्ठ १० पर इस प्रतिका उल्लेख है। इस प्रतिकी मीमांसासे स्पष्ट है कि पं० रामगुलामजी साधारण व्यास न होकर सुविज्ञमर्म व्यास थे। तुलसीदासजीद्वारा रचित ग्रन्थोंकी संख्याके विषयमें भी शोधकोंमें ऐकमत्य नहीं है। रामगुलामजीके मतानुसार उनके केवल १२ ही ग्रन्थ थे—रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामाज्ञा प्रश्नावली, दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, रामचरितमानस और विनयपत्रिका। द्विवेदीजीके संग्रहके अनुसार पहले काशीमें ये ही प्रकाशित हुए थे। रीवाँनरेशके समान काशीनरेश भी इनका विशेष

आदर-सत्कार करते थे। अन्त समयमें इन्होंने रामनगरमें

ईश्वरीप्रसादनारायणजीके सान्निध्यमें रहकर काशीमें ही

स्वयं कवि भी थे। इनकी अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें

कवित्तरामायण प्रमुख है। इसके ७ काण्ड हैं और छन्दोंकी

पण्डित रामगुलाम द्विवेदीजी व्यास ही नहीं थे, वे

ऐहिक लीला समाप्त की।

'रामगुलाम' भजौ छल छाँड़ि कै, ठाकुर राम सिया ठकुराइनि। तेरेहि तीर शरीर रहै यहु, जैसेहु कैसेहुँ गँग गुसाँइनि॥ संसारकी क्षण-भंगुरतापर कविकी सूक्ति पढ़िये-या जग जीवन है दिन चारिक, काल कराल गहै कर चोटी। छाड़त राउ न रॅंकिह कैसेहुँ, देखत है न बड़ी बय छोटी। मान गुमान करै मन में निहं, काहुहि बोलहु बात न मोटी। रामगुलाम भजौ सिय रामहिं, मैं अरु मोर तजौ मित खोटी॥ अयोध्यासे प्रकाशित 'रसिक भक्तमाल'का रामगुलामजी प्रशंसक छप्पय उद्धृतकर इस संक्षिप्त

कृपा कीजिये कि यह शरीर तेरे ही तीरपर छूटै। छोटे-

या बिनती मम देव तरंगिनि, हौ तुम सर्व मनोरथ दाइनि।

चाहत अर्थ न धर्म न कामहिं, मोच्छहू पातक पोतक डाइनि।

छोटे शब्दोंमें मनोरम भावकी बानगी देखिये—

भाग ९४

परिचयको यहीं समाप्त करता हूँ। असनी मिर्जापुर प्रधान दोउ नाम उपासक। वाल्मीकि वक्ता जु एक तुलसीकृत भासक। भाविक प्रवर सुजान संतजन श्रोता जिनके। लोक प्रशंसित विभव विरद किमि कहिए तिनके। परमहंस गुरु कृपा लिह, रामायन सुखधाम पर। (निमानें व्याप्त का कार्य के स्वाप्त का कार्य के कि स्वाप्त के स्वाप्त का कार्य के कि स्वाप्त का कार्य के कि स

सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति संख्या ९] सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) जबतक मनुष्यका चित्त शुद्ध नहीं होता, तबतक कठिनाईके साथ बहुत कालमें पूरा नहीं होता, उसकी सिद्धि वह जिसका चिन्तन करना चाहता है, उसका नहीं कर अनायास थोडे ही समयमें अपने-आप हो जाती है। पाता और जिसका नहीं करना चाहता, उसका चिन्तन कर्मके रहस्यको न जाननेके कारण साधारण होता रहता है। जो काम उसे करना चाहिये, उसे नहीं मनुष्य, जो काम जिस समय करना चाहिये, उसे उस कर पाता और जो नहीं करना चाहिये, उसे करता है। समय नहीं करते एवं जब करते हैं, तब उसे भाररूप इसलिये साधकको चाहिये कि जिस समय जो समझकर, जैसे-तैसे पुरा कर देनेके भावसे करते हैं। पुरी काम उसे कर्तव्यरूपमें प्राप्त हो, उसके करनेमें अपनी शक्ति लगाकर नहीं करते। अतः उनका राग नष्ट नहीं विवेकशक्ति और क्रियाशक्तिको पूर्णरूपसे लगाकर पूर्ण होता। इससे जिस कालमें वे कर्मसे निवृत्त होते हैं, उस धैर्य, उत्साह और सावधानीके साथ जिस ढंगसे उसे कालमें भी उनके अन्त:करणमें नाना प्रकारके व्यर्थ करना चाहिये, वैसे ही करे। उसके करनेमें न तो संकल्पोंकी स्फुरणा होती रहती है; क्योंकि उनमें आलस्य करे और न जल्दबाजी करे। हर एक प्रवृत्तिके क्रियाशक्तिका वेग बना रहता है अथवा काल आलस्य आरम्भमें यह विचार कर ले कि जो काम मैं करना या निद्रामें चला जाता है। चाहता हुँ, उससे किसीके अधिकारका अपहरण तो नहीं मनुष्य-जीवनका समय सब-का-सब अमृल्य है, अत: उसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। उसमें होता है? वह किसीके अहितका कारण तो नहीं है? यह सोचकर अपने प्रभुकी सेवाके नाते उस कामको भी जो निवृत्तिकाल है, जिस समय मनुष्यके सामने कोई कुशलतापूर्वक पूरा करे। ऐसा कोई काम न करे, जिससे योग्य कर्म नहीं रहता, वह समय तो खास तौरपर अपने भगवानुका सम्बन्ध न हो, जो भगवानुकी आज्ञा और परम प्रेमास्पद प्रभुका स्मरण-चिन्तन करते हुए उनके प्रेरणाके विरुद्ध हो। प्रेममें डूबे रहनेका ही है। ऐसे मौकेमें यदि साधकके प्रवृत्तिके बाद निवृत्तिका आना अनिवार्य है। अतः चित्तमें अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन होता रहे या जो काम कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो, उसे उपर्युक्त प्रकारसे तमोगुणकी वृद्धि होकर वह समय जडतामें व्यतीत हो पूरा कर देनेपर निवृत्तिकालमें साधकके चित्तकी स्थिरता जाय तो इससे बढ़कर दु:ख देनेवाली भूल क्या हो सकती और अपने प्रेमास्पदके प्रेमकी लालसाकी जागृति अवश्य है ? इसलिये साधकको चाहिये कि उसे जो कर्म कर्तव्यरूपसे होती है। अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन अपने-प्राप्त हो, उसको भगवान्के नाते, उनकी आज्ञा और प्रेरणाके आप शान्त हो जाते हैं। अनुसार उनकी दी हुई शक्तिका कुशलतापूर्वक प्रयोग कोई भी काम छोटा-बडा नहीं है। जिस कामको करके पुरा करता जाय। जैसे-जैसे साधक प्राप्त-कर्तव्यको लोग साधारण और छोटा कहते हैं, वह कुशलतापूर्वक ठीक-ठीक पूरा करता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसकी ठीक—जैसे, जिस भावसे करना चाहिये, वैसे किया जानेपर समस्त प्रवृत्तियाँ निवृत्तिमें बदल जाती हैं। वह साधकके लिये किसी भी उत्तम-से-उत्तम माननेवाले जो काम जिस प्रकार करना चाहिये, उस प्रकार कामसे कम नहीं रहता; क्योंकि कर्म करनेकी आवश्यकता धैर्य और उत्साहपूर्वक सावधानीसे न किया जानेपर किसी प्रकारके फलकी कामनाके लिये नहीं, किन्तु कर्तामें उसका परिणाम स्वास्थ्यके लिये तथा समाज और देशके जो क्रियाशक्तिका वेग है, उसे पूरा करनेके लिये है। लिये भी हितकर नहीं होता। इस दृष्टिसे भी साधकको उक्त भावसे कर्म करनेपर कर्तापन और भोक्तापन हर एक काम, चाहे वह खान-पान-सम्बन्धी साधारण अपने-आप विलीन हो जाते हैं। जो उद्देश्य बडे-बडे साधनोंसे हो, चाहे परिवार, समाज, देशसे सम्बन्ध रखनेवाला

जिस समय साधक बिना कर्म किये रह सके सही प्रवृत्ति होनेपर सहज निवृत्ति स्वतः प्राप्त होती अर्थात् उसे न तो कोई काम कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो और है। सहज निवृत्ति ज्यों-ज्यों स्थायी और स्थिर होती जाती है, त्यों-ही-त्यों मनमें स्थिरता, हृदयमें प्रीति और न किसी कामको करनेके लिये किसी प्रकारकी क्रियाशक्तिका वेग हो, उस समय कर्मका करना आवश्यक नहीं है। विचारका उदय अपने-आप होता जाता है, जो कि कर्म करनेकी बात तो उसी समयके लिये कही जाती है, मानवकी माँग है। साक्षीभाव (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतीय धर्मसंघ) साक्षीभाव, द्रष्टाभाव अथवा विपश्यना—ये तीनों झगड़ते उस व्यक्तिके पास आकर शिकायत करें कि समानार्थक शब्द हैं, परंतु हैं बहुत गहरे। लिखने, पढ़ने श्रीमान्! एक लहरने दूसरी लहरको पीट दिया, आप उनका झगड़ा मिटाओ। पूरे सागरमें जरा-सी बातपर अथवा बोलनेमें जितने आसान हैं, जीवनके व्यवहारिक धरातलपर उतारनेमें उतने ही कठिन हैं। साक्षीभावपर भगदड़ मची है, लहरें एक-दूसरेके पीछे भागकर केवल चर्चा ही नहीं करना, केवल विचार ही नहीं उठापटक कर रही हैं, प्लीज आप इनका विवाद दूर कराकर समझौता कराओ। आप ही सोचो! वह सुभद्र करना, ये शब्द व्यापारमात्र नहीं, यह ऊहापोहका, तर्क-वितर्कका, शाब्दिक व्यायाम नहीं, अपितु जीवन जीनेकी व्यक्ति बच्चोंकी बातें सुनकर क्या करेगा-कलाका उत्कृष्टतम राजपथ है। इस राजमार्गपर चलनेवालेका (१) झटसे उठकर लहरोंको समझाने दौड पडेगा। (२) बच्चोंका मन रखनेको शान्तिसे दो-चार कभी पराभव हो नहीं सकता। जिस प्रकार कोई समझदार गम्भीर सत्यद्रष्टा व्यक्ति सागरकी ऊपरी कदम सागरकी ओर चलेगा। सतहपर अठखेलियाँ करती, उठती-गिरती, उत्पन्न होती-(३) बच्चोंको देखकर जी भरकर हँसेगा।

जायगा।

हो-ठीक-ठीक करना चाहिये।

मरती, किनारेपर दूरतक फैलती-सिमटती लहरोंको देखकर

शान्त रहता है, उनके बढ़नेसे खुश नहीं होता और

लहरोंके घटने या मिटनेसे दुखी नहीं होता, क्योंकि वह

जानता है कि लहरें काल्पनिक हैं तथा जल वास्तविक

है। जब लहरें हैं ही नहीं, तब उनके जन्म अथवा

मृत्युका, उत्थान तथा पतनका, उन्नति तथा अवनतिका,

घटने अथवा बढ़नेका तो प्रश्न ही नहीं बनता। बुद्बुद,

फेन, तरंग—ये सब कुछ जल ही है। जलमें ही भासित

है। इनका आधार जल ही है। जल न हो तो न तरंग,

न बुद्बुद, न फेन, कुछ न होगा। तब कोई समझदार

व्यक्ति तरंगोंके प्रीति-मिलन अथवा तरंगोंकी टकराहटको

सच्चा कैसे मान सकता है? वह तो इस खेलको जी

भरकर निहारता हुआ जलकी विविध क्रिया-प्रतिक्रियाओंको

नाम-रूपोंके प्रपंचको मनोरंजनका साधन मानकर नि:शब्द

आनन्दमें ही रहेगा। अचानक कोई छोटे बच्चे लडते-

भाग ९४

जब साधकको कर्म करना आवश्यक हो जाय।

(४) केवल देखेगा, मुसकरायेगा और शान्त हो

(५) बच्चोंको उपदेश देकर इसका रहस्य बतायेगा।

(६) उनसे कहेगा-बिना बोले चुपचाप इस

खेलको सिर्फ देखो, देखो और देखो, और बालक यदि

साक्षीभावसे, द्रष्टाभावसे उन लहरोंको देखने लगेंगे तो

उनकी समझमें सच आ जायगा। अपनी नादानीपर हँसी

आयेगी। प्रश्नोंकी निरर्थकता स्वतः सिद्ध हो जायगी।

सचमुच ये सब जगत्का प्रपंचमात्र है। जीवन-मरण,

उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, संयोग-वियोग, हार-

जीत, मान-अपमान, सफलता-असफलता, लाभ-हानि,

मित्र-शत्रु, सुख-दु:ख, धूप-छाँव, दिन-रात, नरक-

स्वर्ग, अनुकूलता-प्रतिकूलता सब कुछ जलमें उठी

लहरोंके खेल-जैसा ही है। इन सबका आधार एकमात्र

चिन्मय ब्रह्म ही है। ब्रह्ममें ही यह सकल प्रपंच भासित

संख्या ९] साक्षी	भाव ४१
**************************************	**************************************
हो रहा है। ब्रह्म ही इसका आधार है। ब्रह्मके आश्रयके	शरीर क्यों बदला? मैं क्यों नहीं बदला? बचपन,
बिना यह कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार जलके बिना	जवानी, बुढ़ापा—ये शरीरके धर्म हैं या आत्माके ? यदि
लहर, बुद्बुद, फेन नहीं हो सकते, ठीक वैसे ही ब्रह्म	में (आत्मा) शरीरसे अलग हूँ तो चोट लगती शरीरको
सत्ताके आश्रयके बिना विविध नामरूपात्मक यह जगत्	है, फिर क्यों रोता है ? कौन रोता है ? गम्भीरतासे इन
स्वप्नमें भी सम्भव नहीं। जब जगत् है ही नहीं, तब	प्रश्नोंपर विचार करना, घबराना नहीं कि कितने सारे
इससे मिलनेवाले सुख-दु:खसे हम हर्ष अथवा शोकको	प्रश्न हैं। इनका उत्तर मैं नहीं जानता। आप शान्तभावसे
सत्य मानकर मुसकराते-रोते क्यों हैं ? यही समझना है,	चिन्तन करो, उत्तर खुद ही अन्दरसे आते जायँगे। अब
इसीको सिर्फ देखना है। तमाशा देखो, तमाशा बनो मत।	अग्रिम क्रममें अपने श्वासोंको ही देखना है। श्वास
(तमाशा खुद न बन जाना, तमाशा देखनेवालों) द्रष्टा	कहाँसे उठा ? कहाँतक जा रहा है ? नाभिदेशतक हमारा
बनो, दृश्य नहीं। आप जितना अधिक द्रष्टाभावको	श्वास जाकर पूरे शरीरकी नकारात्मक ऊर्जाको नाकके
परिपुष्टकर जीवनमें उतारोगे, उतना ही जीवनकी उलझनें	रास्तेसे बाहर निकाल रहा है तथा सकारात्मक स्वच्छ
सुलझती चली जायँगी। हम विषम-से-विषम परिस्थितिमें	वायुको पुन: अन्दर भर रहा है। नाड़ीशोधनके साथ
भी शान्त–संयत रह सकेंगे।	श्वास-प्रश्वासकी यह क्रिया चल रही है, इसको देखना
प्रश्न -हम कैसे अचानक सुख-दु:खसे लबालब	है। श्वास आ-जा रही है—मानो लहर सागरके ऊपर
इस जगत्को काल्पनिक कह सकते हैं? जबकि चोट	उठ रही है, गिर रही है। शरीरको देखो, श्वासको देखो,
लगती है तो दर्द होता है, भूख-प्यासका अहसास होता	इन्द्रियोंको, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकारको सूक्ष्म दृष्टिसे
है। मुसकराहट तथा अश्रुप्रवाह इस जगत्की यथार्थताका	देखो। जब आपको कामका वेग आ रहा हो, तब
प्रमाण भी देते हैं।	स्वयंको देखो, यह कामरूपी तूफान, कहाँसे आ रहा है ?
उत्तर-भाई! ये सारी घटनाएँ तो सपनेमें भी घटती	जब आपको क्रोध आये, तब अपना अनुशीलन करो,
हैं। वहाँ भी भूख-प्यास, रोना-हँसना, जीना-मरना देखा	यह क्रोध कहाँसे आया, क्यों आया, क्या करने आया?
जाता है, परंतु केवल तबतक ही जबतक कि आँख नहीं	लोभ, मोह, घृणा, प्रेम आदि इन अवस्थाओंको सावधानीसे
खुलती। जगते ही सपनोंका संसार खतम हो जाता है।	देखो, ये क्या हो रहा है ? क्यों हो रहा है ? क्रोधसे भरे
ठीक वैसे ही जबतक मोह-मायाकी निद्रामें जीव फँसा	हुए किसी इंसानको गौरसे देखो, कैसा लग रहा है?
है, तभीतक यह जगत् सच्चा-सा लगता है, जैसे ही	सोचो, यह परेशान क्यों है ? इसकी आँखें लाल, होठ
किसी सन्तकी कृपासे ज्ञानद्वारा मोहाज्ञाननिद्रा खत्म	फड़फड़ा रहे हैं, शरीर कॉॅंप रहा है, आवाज विषैली,
होगी, यह जगत्का तमाशा भी खत्म हो जायगा। परंतु	कर्कश, भद्दी, गंदी हो रही है, शब्द अंगारे-जैसे बरस
ये होगा केवल साक्षीभावसे, द्रष्टाभावकी साधनासे।	रहे हैं। क्रोधावस्थाकी इस कुरूपताको हमें अपने
द्रष्टाभावकी साधना क्या है—सर्वप्रथम एकान्त	जीवनमें नहीं आने देना है। द्रष्टाभावकी साधनाका
शान्त स्वच्छ स्थानपर सुखासन अथवा पद्मासनमें बैठकर	आशय है—उसको खोजना, जो जगते समय भी देख
नेत्र बन्द करके सहजतासे गहरी श्वास लें। (श्वासकी	रहा है, सपना देखते समय भी देख रहा है तथा सोनेके
आवाज न हो) तदनन्तर पूरे संसारसे मन हटाकर केवल	समय भी देख रहा है। द्रष्टा समझमें आ गया तो
खुदको अपने शरीरको ही देखें। यह शरीर कैसा है?	संसारका कोई झमेला क्लेश रहेगा ही नहीं।
क्यों है? कहाँसे आया? कहाँ जायगा? कबसे है?	एक बार राजा जनकने एक विचित्र सपना देखा, वे
कबतक रहेगा? शरीरसे पहले क्या था? शरीरके बाद	सपनेमें भूखसे व्याकुल भिखारीके वेषमें लोगोंसे रोटी माँग
क्या रहेगा? इस शरीरमें है क्या? क्या मैं शरीर हूँ?	रहे हैं। लोग उनको तिरस्कारकी नजरसे देखते, अपशब्द
अथवा शरीरसे भिन्न हूँ ? यदि शरीर और मैं एक हैं तो	बोलते, सलाह तो देते, परंतु सहायता करनेको आगे कोई

िभाग ९४ ****************** ****************** नहीं आता था। अचानक राजा जनककी नींद खुल गयी। विश्राममें था, सुन्दर वस्त्र पहने था, सुस्वाद दिव्य पदार्थींका वे जगनेपर देखते हैं कि मैं तो राजमहलमें हूँ, मैं तो राजा भोग लगानेसे पूर्ण तृप्त था और अब स्वयं देख लो तुम हूँ। मुझको भूख भी लगी नहीं। भीख माँगनेका तो प्रश्न राजा हो कि रंक। जाग्रत्में जो सजग है, सपनेमें भी जो सजग है और सो जानेके बाद भी जो जग रहा है, वह ही नहीं बनता। साधारण इंसान होता तो स्वप्नगत दृश्यको— दु:खको हँसीमें उड़ाकर भूल जाता, परंतु राजा जनक साक्षी चेतन द्रष्टा आत्मा तुम हो। दृश्य बदले, दिखने-वाले बदले, परंतु द्रष्टा (देखनेवाला) नहीं बदला। जो चिन्तित हो उठे। गम्भीर होकर विचार करने लगे, यदि सपना झूठा था तो घटित क्यों हुआ ? क्या मेरे मनमें अभी बदलता है, कभी है कभी नहीं, वह झुठा है। जो नहीं भी संसारकी भूख शेष है ? क्या मैं अब भी एक भिखारी बदलता, वही सच है। वही साक्षी है। वही द्रष्टा है। इसी ही हूँ। मैं राजा हूँ अथवा भिखारी ? भिखारीपनका सपना साक्षीभाव द्रष्टाभावकी साधनाको ही विपश्यना भी कहते हैं। सच था अथवा राजपनका यह दृश्य सच है? बस, पश्य=देख, पश्यना=देखना, वि+पश्यना=विशेष राजाका मन बेचैन हो गया। वह सच था कि यह सच है ? प्रकारसे देखना। विशेषेण पश्यति येन विधिना तस्यैव संज्ञा विपश्यना। शरीरप्राप्तिसे पूर्व आत्मा, शरीर नष्ट राजसभामें आते ही राजपण्डितोंके सम्मुख राजाने पहेलीनुमा प्रश्न रख दिया, महाराज! वह सच था या यह सच है? होनेके अनन्तर आत्मा, शरीरके रहते भी आत्मा ही सत्य कोई उत्तर न दे सका। लोग समझ ही न पाये कि मामला है; क्योंकि वही अपरिवर्तनीय है। जैसे घड़ा बननेसे पहले क्या है ? अष्टावक्रजी महाराज पधारे, राजाने नमन किया भी मिट्टी है, घड़ा फूटनेके उपरान्त भी मिट्टी है और घड़ेके रूपमें भी मिट्टी ही है। नाम-रूप बदले, परंतु तथा प्रश्न कर दिया, गुरुदेव! वह सच था कि यह सच है ?' प्रश्न सुनते ही आठ अंगोंसे वक्र (टेढ़े) ज्ञानवृद्ध मिट्टी एक रही, वैसे ही जब आपके जीवनमें झंझावात आये, आपका प्रिय मित्र धोखा देकर किसीके साथ चला अष्टावक्रजी ने प्रगाढ़ प्रीतिके साथ राजा जनकको देरतक अपलक देखा, मानो राजाकी आँखोंके रास्तेसे उनके जाय, आपका पुत्र अथवा पिता अथवा पित अथवा पत्नी दिलमें उतरकर सब कुछ जान लेनेकी भावना उनके मनमें अथवा वह, जिसपर आपको बहुत भरोसा था, वह और सहसा मुसकराते हुए अद्वैतपथपथिक आपको छोड़ जाय अथवा व्यापारमें भारी घाटा लग जाय, वेदान्तसिद्धान्तकाननमें पंचानन श्रीअष्टावक्रजी महाराज शेयर मार्केटमें पैसा डूब जाय, जेब कट जाय, दुनियामें बोले—हे राजन्! न वह सच था, न यह सच है। राजाको बड़ी भारी बदनामी हो जाय, उन पलोंमें जब ये लगे कि लगा कि बाबाने बिना समझे उत्तर दे दिया है। अत: कुछ जीवन बेकार है, जी नहीं सकता, मर ही जाना चाहिये, बोलनेको उत्सुक राजाके दृष्टिदर्पणमें तैरते प्रश्नोंको समझकर तब कृपया एक बार ठंडी साँस लेकर शीतल जल पीकर

श्रीअष्टावक्रजी महाराज पुन: बोले, राजन्! जितना मिथ्या (किल्पित) स्वप्नमें भिखारी बनना है, उतना ही मिथ्या जाग्रत्में राजा बनना है। तुम न ही राजा हो, न ही भिखारी। न पुरुष हो न स्त्री। न युवा हो न वृद्ध। न गोरे हो न काले। अरे राजन्! तुम तो नित्य शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यस्वरूप निर्मल आत्मा हो। राजा जनकने विविध प्रश्न किये,

अन्तमें महाराज अष्टावक्र बोले, राजन्! जिसने सपना

अपने सिरको झटकना, शान्तभावसे लम्बी गहरी केवल दस बार भरपूर साँस लेना और खुदसे पूछना तू क्या है ? जन्मके समय तेरे पास क्या था? तेरे साथ कौन था? जब इस दुनियाको छोड़ेगा, तब तेरे साथ क्या होगा? और कौन-कौन साथ होंगे? अकेला था अकेला ही

जायगा। अकेला आया, अकेला ही जायगा। खाली हाथ

आया, खाली हाथ जायगा। नंगा आया और नंगा ही

देखा, वह कौन था? और जो अब तुमको राजाके रूपमें जायगा। तब जो हुआ, उसे हो जाने दो, उठकर खड़े देख रहा है, वह कौन है ? यदि यह शरीर राजा अथवा हो, फिर अपने जीवनमें खुशियोंके रंग सजाओ और भियानती प्रैंड को छोड़ के जात रेहें त्र हा त्रातिक डो / साइल सें कुर्या ha क्षाना दिका कि कि कि कि कि कि कि कि

साधनोपयोगी पत्र संख्या ९] साधनोपयोगी पत्र प्राप्त नहीं होगी, जिसका फल ईश्वरकी प्राप्ति या जन्म-(8) जीव और आत्मा मरणके बन्धनसे छूटना है। नाम-जप तो ईश्वरस्मृतिके प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण। आपका पत्र लिये किया जाता है, वह गरीबोंकी सेवामें बाधक नहीं यथासमय मिल गया था, किंतु समय कम मिलनेके है। वह तो अन्त:करणको पवित्र करता है, ईश्वरमें प्रेम कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। उत्पन्न करता है, सेवा-भावको जाग्रत् करता है। अतः आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है-उसके साथ देश-सेवा आदिकी तुलना नहीं की जा (१) जीव और आत्मामें वास्तवमें कोई भेद नहीं सकती। है। बद्धावस्थामें जिसको जीव कहते हैं, वही स्वरूपसे (५) प्रकृति और जीवात्माको परमेश्वरका शरीर मानना और ईश्वरको जीवात्माका भी आत्मा मानना एवं आत्मा है। (२) आत्मा या जीव ब्रह्मका अंश है, न कि प्रकृति और जीव-इन दोनों शक्तियोंसे युक्त एक पूर्णब्रह्म है। उपासना करनेसे पूर्णब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति परमेश्वरको मानना—यह विशिष्टाद्वैतका सिद्धान्त है। हो सकती है। पूजा तो जिसका लक्ष्य करके की जाती इस विषयमें आप अधिक क्या जानना चाहते हैं, सो है, उसकी होती है, मनुष्य या अन्य प्राणीकी पूजा यदि लिखें। ईश्वरकी आज्ञा मानकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये की (६) आत्मा ब्रह्मका अंश है, ब्रह्म अंशी है। अत: जाती है तो वह भी ईश्वरकी ही पूजा होती है, परंतु यदि वास्तवमें अभेद होनेपर भी शक्तिमें बडा भारी अन्तर है। शक्ति और सामर्थ्यका नाप-तौल प्राकृत जगत्को सामने हम किसी प्राणीसे या मनुष्यसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये उसकी पूजा करते हैं, तो वह पूजा रखकर किया जाता है, जो कि सबकी सब रचना उस ईश्वरकी पूजा नहीं है। इसलिये उसका महत्त्व ईश्वर-परमेश्वरके संकल्पमात्रसे होती रहती है। इसपर विचार पूजाके समान नहीं हो सकता। पूजा आत्माकी नहीं की करनेवाला और उसकी बुद्धि-ये सब उस परमात्माकी जाती, शरीरकी की जाती है। शरीर ब्रह्म नहीं होता, रचनाका एक क्षुद्रतम अंश है, वह उसकी महिमाका पार कैसे पा सकता है, उसकी बुद्धि वहाँतक कैसे पहुँच अतः विचार करना चाहिये। (३) ईश्वरने सृष्टिकी रचना प्राणियोंके अच्छे-बुरे सकती है? कर्मींका फल भगतानेके लिये की। इसलिये ईश्वरमें (७) जीवात्मा परमात्माका अंश है—यह वेद और किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं किया जा सकता। उपनिषदोंमें जगह-जगह लिखा है। वह एक ही ईश्वर जन्म-मरणके बन्धनसे छूटनेके लिये ही ईश्वरने कृपा अपने अंशभृत अनेक और असंख्य जीवोंको उनके कर्म करके मनुष्यका शरीर दिया और छूटनेका उपाय बताया। और वासनाके अनुसार विभिन्न योनियोंमें उत्पन्न करता इसपर भी लोग छूटना नहीं चाहते तो क्या उपाय? है और उनके कर्मफलोंका विधान करता है। अद्वैतवादके (४) आप जो यह सोचते हैं कि देश और अनुसार इस विषयमें आप क्या जानना चाहते हैं, स्पष्ट लिखें। शेष प्रभुकृपा। गरीबोंकी सेवा करनी चाहिये, यह बहुत अच्छी बात है। यह काम यदि ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये किया जाय तो (२) अवश्य ही ईश्वर प्रसन्न होते हैं, पर यदि गरीब और हनुमान्जी और रावणका स्वरूप असहायोंको अपनेसे हीन समझकर अपनेमें दातापनका प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र अभिमान करके उनकी सेवा की जाय तो वह एक शुभ मिला। 'वाल्मीकीय रामायण' संस्कृतमें है, यह तो आप जानते ही होंगे। कोई भी विद्वान् या संस्था किसी कर्मकी श्रेणीमें जायगा। उससे ईश्वरकी वह प्रसन्नता

िभाग ९४ ग्रन्थका अर्थ तोड्–मरोड्कर अपनी धारणाके अनुसार 'विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन्।' कर डाले या उसपर मनमानी टिप्पणी लिख दे, इसका (सुन्दर० ३।१३) तो कोई उपाय नहीं है। अवश्य ही श्रीहनुमान्जी उन्हें 'वातात्मज, मारुतात्मज' कहा गया है— आजकल-जैसे सामान्य बन्दर नहीं थे, यह तो सब 'आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान् मारुतात्मज:।' मानते हैं, परंतु वे थे वानरजातिके ही। वाल्मीकीय (सुन्दर० ४३।३) रामायणमें उनके लिये बार-बार 'कपि', 'महाकपि', श्रद्धा'''''।' 'ततो वातात्मजः 'कपिकुंजर', 'प्लवंग', 'वानर' शब्द आये हैं। इन (सुन्दर० ४३।१५) इससे उनका 'पवनपुत्र' होना वाल्मीकीय रामायणमें शब्दोंका अर्थ आप किसी शब्दकोषमें देख सकते हैं। हनुमान्जीका गोत्र वानर था—ऐसी बात कहीं नहीं सिद्ध है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण या किसी प्राचीन लिखी है। इसी प्रकार 'पुँछ' या 'लांगूल' शब्दका अर्थ ग्रन्थमें ऐसा एक भी शब्द या वाक्य नहीं है—जिससे यह झंडा या चाबुक नहीं होता। यह भी आप जानते होंगे। कहा जाय कि रावण चार वेद, छ: शास्त्रका ज्ञाता होनेसे हनुमान्जी सदा झंडा या चाबुक लिये रहते थे-ऐसा दशमुख तथा पूरा बलवान् होनेसे 'बीसभुजा' का कहा कहीं कोई वर्णन नहीं है। जाता था। वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता ऋषियोंमेंसे कोई दशशिर 'तस्य लाङ्गुलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः।' नहीं कहा जाता और परशुरामजी-जैसे पराक्रमी भी बीस तो क्या चार भुजाके भी नहीं कहे जाते। अत: ये सब (सुन्दर० १।३४) 'एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः।' निराधार कल्पनाएँ हैं। रावण बहुरूपिया भी नहीं था। वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट उसके दस मस्तक, बीस (सुन्दर० १।४३) भुजाका उल्लेख है। अवश्य ही वह कामरूप 'इच्छानुसार 'सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः।' रूपधारणकी शक्ति रखनेवाला'भी था। रावणकी उत्पत्तिके (सुन्दर० १।४३) समय उसके रूपका यह वर्णन है— 'स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्करकोरकैः।' (सुन्दर० १।५) दशग्रीवं महादंष्ट्ं नीलाञ्जनचयोपमम्। ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम्॥ 'लाङ्गलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते।' (सुन्दर० १।६०) (उत्तर० ९। २८) महान्''''''''''''''''''''''''' उत्पन्न होते ही रावण चार वेद, छ: शास्त्रका 'लाङ्गलचक्रेण विद्वान् नहीं हो गया होगा। वाल्मीकीय रामायणमें (सुन्दर० १।६१) हनुमान्जीकी पूँछमें पुराने रूईके कपड़े लपेटकर अनेकों स्थानोंपर उसे दशग्रीव, विंशतिभुज बताया गया उनमें आग लगानेका स्पष्ट वर्णन है। उदाहरणके लिये है। वह एक साथ दस धनुष उठाकर युद्ध करता था— डेढ़ श्लोक यहाँ दिया जाता है-यह भी स्पष्ट वर्णन है। आप अधिक प्रमाण एवं कपीनां किल लाङ्गलिमष्टं भवति भूषणम्। वाल्मीकीय रामायणका ठीक अर्थ देखना चाहें तो तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥ जिसमें रामायणके श्लोकोंका अर्थमात्र दिया गया हो-वेष्टयन्ति स्म लाङ्गलं जीर्णैः कार्पासकैः पटैः। ऐसी रामायण पढ़नी चाहिये। किसी पुस्तकालयसे लेकर इन उदाहरणोंके होते भी कोई मनमाना अर्थ करे— सटीक वाल्मीकीय रामायणका अध्ययन करें। ऐसे अर्थ, जो उस शब्दसे किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं श्रीभरतजी महाराज भगवान् श्रीरामके प्रभावसे रखते—तो उसके अर्थको एक दुराग्रहपूर्ण प्रयत्न ही परिचित थे। वे जानते थे कि लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामजी रावणको मारकर ही आयेंगे। इसीसे वे कहा जायगा। हनुमान्जी 'पवन-पुत्र' थे। इसीसे उनका एक नाम रामजीके आज्ञापालनार्थ नन्दिग्राममें रहे, लंका नहीं गये। 'मारुति'पड़ा, जो वाल्मीकीय रामायणमें बार-बार आया है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, ३	शक	१९४२, सन् २०२०,	सूर्य दक्षि	ाणायन, श
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	
प्रतिपदा रात्रिमें ३। २२ बजेतक	शुक्र	रेवती अहोरात्र	२ अक्टू०	महात्मागाँधी-
द्वितीयारात्रिशेष५ ।२८ बजेतक	शनि	रेवती दिनमें ८। ३४ बजेतक		
तृतीया अहोरात्र	रवि	अश्वनी ,, ११।१२ बजेतक	8 ,,	भद्रा रात्रिमें

सोम । भरणी 🕠 १।४५ बजेतक

मंगल कृत्तिका सायं ४।५ बजेतक

रोहिणी 🦙 ६। २ बजेतक

मृगशिरा रात्रिमें ७। ३४ बजेतक

आर्द्रा ,, ८। ३७ बजेतक

गरद्-ऋतु, अधिक आश्विन-कृष्णपक्ष

۷ ,,

,,

6 ,,

9 ,,

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि -जयन्ती।

नमें ८।३४ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें ८।३४ बजे। भद्रा रात्रिमें ६।३० बजेसे, मूल दिनमें ११।१२ बजेतक।

भद्रा प्रात: ७। ३२ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें ८। १९ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७।५४ बजे।

भद्रा दिनमें १२। ० बजेसे रात्रिमें १२। १९ बजेतक, मिथुनराशि

प्रातः ६।४९ बजेसे।

कालाष्टमी।

कन्याराशि रात्रिमें १२।३३ बजेसे, प्रदोषव्रत। भद्रा प्रातः ६।२५ बजेसे रात्रिमें ६।१८ बजेतक। तुलाराशि रात्रिमें ३।८ बजेसे, अमावस्या, अधिकमास समाप्त। मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा प्रात: ६। २८ बजेतक, पूर्णिमा, मूल रात्रि ६। २० बजेतक,

महर्षि वाल्मीकिजयन्ती, कार्तिकस्नान प्रारम्भ।

शनि पुनर्वसु ,, ९।९ बजेतक **कर्कराशि** दिनमें ३।० बजेसे, चित्रामें सूर्य रात्रिशेष ४।४ बजे। 20 11 भद्रा रात्रिमें ११।५१ बजेसे, मूल रात्रिमें ९।१२ बजेसे। पुष्य ,, ९।१२ बजेतक ११ ,, भद्रा दिनमें ११।२४ बजेतक, सिंहराशि रात्रिमें ८।४७ बजेसे। आश्लेषा 🕠 ८ । ४७ बजेतक सोम १२ " पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें ८।१ बजेतक। मघा 🗤 ८ । १ बजेतक मंगल १३ पू० फा० 🗤 ६ । ५४ बजेतक १४ उ०फा० सायं ५।३२ बजेतक १५ हस्त 🕠 ३।५८ बजेतक १६

द्वादशी 🗥 ८ । २४ बजेतक

संख्या ९]

तृतीयाप्रात:७।३२ बजेतक

चतुर्थी दिनमें ९।२३ बजेतक

सप्तमी " १२ ।३८ बजेतक

अष्टमी "१२।४२ बजेतक

नवमी '' १२।१८ बजेतक

दशमी 😗 ११। २४ बजेतक

एकादशी '' १०।४ बजेतक

पूर्णिमा रात्रिमें ७।३१ बजेतक

शनि

पंचमी " १०।५५ बजेतक बुध

षष्ठी " १२।० बजेतक गुरु

शुक्र

रवि

बुध

त्रयोदशी प्रात: ६ । २५ बजेतक गुरु अमावस्या रात्रिमें १।५१ बजेतक शुक्र सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, शुद्ध आश्विन-शुक्लपक्ष तिथि दिनांक वार नक्षत्र शारदीय नवरात्रारम्भ, तुलासंक्रान्ति रात्रिमें ९।१४ बजे। शनि चित्रा दिनमें २।२० बजेतक १७ अक्ट्र० रवि

प्रतिपदा रात्रिमें ११। २७ बजेतक द्वितीया "९।४ बजेतक स्वाती 🗤 १२। ३९ बजेतक वृश्चिकराशि रात्रिशेष ५। २६ बजेसे। १८ ,, तृतीया*"* ६ । ४७ बजेतक सोम विशाखा 🕠 ११।३ बजेतक १९ भद्रा रात्रिशेष ५। ४३ बजेसे। चतुर्थी सायं ४।३९ बजेतक मंगल अनुराधा ,, ९।३६ बजेतक २०

भद्रा सायं ४।३९ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल दिनमें ९।३६ बजेसे। पंचमी दिनमें २ ।४८ बजेतक धनुराशि दिनमें ८। २२ बजेसे। ज्येष्ठा 🗤 ८ । २२ बजेतक बुध २१ षष्ठी 🗤 १।१७ बजेतक मूल प्रातः ७। २९ बजेतक मूल प्रातः ७। २९ बजेतक। गुरु २२

भद्रा दिनमें १२। ९ बजेसे रात्रिमें ११। ४८ बजेतक, मकरराशि सप्तमी 🗤 १२ । ९ बजेतक पू०षा० ,, ६।५४ बजेतक शुक्र २३ दिनमें १२।५१ बजेसे, महानिशा-पूजा। श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत, स्वातीका सूर्य दिनमें १।४५ बजे। अष्टमी 🗤 ११ । २७ बजेतक उ०षा० 🕠 ६ । ४४ बजेतक शनि २४ रवि नवमी ,, ११ ।१४ बजेतक श्रवण 🗤 ७।५ बजेतक २५

कुम्भराशि रात्रिमें ७। २९ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ७। २९ बजे, विजयादशमी। दशमी ,, ११ ।३३ बजेतक सोम धनिष्ठा दिनमें ७।५५ बजेतक **भद्रा** रात्रिमें ११।५९ बजेसे। २६ भद्रा दिनमें १२। २४ बजेतक, मीनराशि रात्रिशेष ४। ३६ बजेसे, एकादशी 🗤 १२ । २४ बजेतक शतभिषा 🗤 ९ । १६ बजेतक मंगल २७ पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)।

द्वादशी 🕠 १ ।४२ बजेतक पू०भा० 🗤 ११ । ४ बजेतक २८ प्रदोषव्रत। बुध ,, त्रयोदशी 🕠 ३।२५ बजेतक उ०भा० 🗤 १। १६ बजेतक मुल दिनमें १।१६ बजेसे। गुरु २९ भद्रा सायं ५। २३ बजेसे, मेषराशि सायं ३। ४३ बजेसे, पंचक चतुर्दशी सायं ५ । २३ बजेतक शुक्र रेवती सायं ३।४३ बजेतक ३० समाप्त सायं ३।४३ बजे, शरद् पूर्णिमा।

अश्वनी रात्रिमें ६।२० बजेतक |३१

कृपानुभूति स्वर्गसे वापसी बात सन् १९९४ ई० के मध्यकी है। मैं अपने कुछ लोग ध्यान एवं पूजा-पाठ, ईश्वर-आराधनामें व्यस्त

मित्रके साथ हैदराबाद गया था। वहाँ मुझे मित्रकी थे, चारों ओर फूल खिल रहे थे, उनकी मधुर सुगन्ध

हो गयी थीं। उन्हें वहाँके प्रसिद्ध राजकीय चिकित्सालयमें उपचारके लिये भरती किया गया। उनसे उनकी बीमारीके विषयमें पूछनेपर उन्होंने जो घटना बतायी, वह एकदम

आश्चर्यजनक एवं पराशक्तिके सम्बन्धमें सोच-विचार करनेको बाध्य करनेवाली है। उन्होंने मुझे बताया कि चिकित्सालयके कर्मचारियों-

चिकित्सकोंने उपचार, सेवा-शृश्रुषामें कोई कसर नहीं छोड़ी, पर मेरी हालत बिगड़ती ही गयी। तीन दिन बाद यह सोचकर कि अब मैं कुछ ही पलोंकी मेहमान हूँ, चिकित्सालयके कर्मचारियोंने मुझे बेडसे उतारकर नीचे

सुलाकर श्वेत चादर ओढ़ा दी।

उन्होंने आगे बताया कि ज्योंही मुझे बेडसे उतारकर जमीनपर लिटाया गया तो द्वारपाल-जैसे दो व्यक्ति एकदम दूध-जैसे श्वेत कपड़े पहने मुझे लेने आ गये। दोनोंने मेरे दोनों हाथ पकड़े और मुझे अपने साथ चलनेको कहा। मैं

नितान्त अशक्त बीमार थी, पर पता नहीं कहाँसे शक्ति आ गयी, उनसे कोई प्रश्न ही नहीं किया। मैं उनके साथ-साथ चल दी। उन्होंने मुझे एकाएक एक भव्य भवनके बाहर

ले जाकर खडा कर दिया, मैं मौन खडी देखती ही रही। वहाँका वातावरण देखकर मैं प्रसन्न हो रही थी। स्वर्णमण्डित

रत्नजटित दरवाजे थे, दरवाजोंके दोनों ओर दीवारोंपर विभिन्न देवी-देवताओं के मन मुग्ध कर देनेवाले आकर्षक चित्र बने थे, भव्य प्रासाद था वह, एकदम श्वेत पुता हुआ,

सब लोग सफेद पोशाक पहने हुए थे। कुछ लोग मनपसन्द सुस्वादु प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। सेवकोंद्वारा षड्रस व्यंजन परोसे जा रहे थे। विभिन्न देवी-देवताओंकी मनोहारी

तस्वीरें दीवारोंपर लगी हुई थीं, उनके नीचे ही भवन-प्रमुख, जो इस आलीशान भवनके स्वामी ही रहे होंगे, विराजमान थे। उनका आसन बहुमूल्य तथा चित्ताकर्षक

था। सहायिकाएँ उनके दोनों ओर खड़ी चँवर डुला रही

पत्नीने बताया कि वे एक वर्ष पूर्व गम्भीर रूपसे बीमार मनको आह्लादित कर रही थी, वहाँ पहुँचते ही मनमयूर नाच उठा। वहाँ रहनेवालोंके पलंग कीमती तथा सुन्दर थे, सबको पूरी स्वतन्त्रता थी, लगा कि यह तो साक्षात् स्वर्ग है, सभी शान्त मनसे अपने-अपने काममें व्यस्त थे।

लेकर द्वारतक आया। उसने बहीको कई बार उलटा-पलटा तथा दोनों व्यक्तियोंको संकेतोंसे पता नहीं क्या कहा और हवाके झोंकेकी भाँति द्वार ही बन्द कर दिया।

आयी और लुप्त हो गयी। धरतीपर ले आये तथा लिटाकर वहीं रखी चादर ओढा दी और स्वयं अदृश्य हो गये।

इसी बीच चिकित्सक रोगियोंको देखने आये। मुझे देखनेपर पाया कि श्वास चल रही है, पर बहुत धीमी गतिसे। उस डॉक्टरने वरिष्ठ चिकित्सकोंको बताया, उन्हें स्थितिकी जानकारी दी। वरिष्ठ

रह गये कि मुझे कितना लाभ हो रहा है तथा डेढ-दो सप्ताहके उपचारके बाद मुझे चिकित्सालयसे छुट्टी दे दी गयी।

'काहेकी कृपा है, मैं तो भगवान्के चरणोंमें पहुँच गयी थी, स्वर्गमें भी उसीने बुलाया था तथा भगवान्ने वापस मुझे इस नरकमें ढकेल दिया।' उन्होंने अनमने

चाहते हुए भी मैं वह स्वर्गीय आनन्द न ले सकी, मैं उस परम सुखदायक निवासमें प्रवेशसे वंचित रह गयी। यह सब इतना जल्दी हो गया कि मानो प्रकाशकी किरण इसके बाद दोनों व्यक्ति मुझे वापस चिकित्सालयकी

अचानक ही मुझे यहाँ लानेवाले दोनों व्यक्तियोंके

संकेतोंपर एक आदमी एक बडी बही-सरीखी पुस्तक

दोनों व्यक्तियोंके साथ ही मैं भी बाहर ही रह गयी और

चिकित्सकोंने परामर्शकर मुझे कुछ शीघ्रप्रभावी एवं जीवनरक्षक दवाइयाँ दीं। चिकित्सक भी आश्चर्य करते

घरपर प्रसन्नता छायी हुई थी। सब लोग कह रहे थे—'भगवान्को धन्यवाद है, उनकी कृपा है।'

थींनांत्रत्तक्तींडामोशक्तांडरुपत्ती रहात्रं हमानात्ताहार्ड श्रीतार्डशी. कुल्लाँ halfin हो । एप प्रमान विकास कार्या कार्या कार्या कार्या वार्या कार्या वार्या वार्य

पढो, समझो और करो संख्या ९] पढ़ो, समझो और करो गौरव बढ़ा रहे हैं। (१) डॉ० वाकणकर अपनी युवावस्थामें भारतीय सादा जीवन, उच्च विचार स्वतन्त्रता-संग्रामके अग्रगण्य सैनिकोंमें से एक रहे। वे विश्वविख्यात पुरातत्त्ववेता, इतिहासकार डॉ॰ विष्णु एक कर्मठ क्रान्तिकारी थे और 'शठे शाठ्यम समाचरेत' श्रीधर वाकणकर भारतीय संस्कृति और इतिहासके अनन्य साधक-उपासक थे। मालवाके इतिहास और उनका दर्शन था। पुरातत्त्वके जीवित 'गजेटियर' डॉ॰ वाकणकर सादगी प्राचीन और दुर्लभ स्वर्ण-रजत सिक्कोंका उनके और सरलताके जीवन्त प्रतीक थे। विनम्र और सज्जन, पास अनुपम भण्डार था। उनकी विलक्षण स्मरणशक्तिमें मुसकुराते हुए वाकणकरजीसे जो एक बार भी मिला सारे संसारका इतिहास कालक्रमसे भरा पड़ा था। उनसे होगा, मैं नहीं समझता उनके अकृत्रिम स्वभावसे मिलना इतिहासके अधखुले पन्नोंको पढना होता था। वे प्रभावित न हुआ होगा। अपनी वेशभूषाके प्रति वे जितने स्वयं एक जीवित विश्वकोष हो चले थे, मानो सन्दर्भ-लापरवाह-से थे, इतिहास और पुरातत्त्वके प्रति उतने ही ग्रन्थ या मानक कोश हों। सजग द्रष्टा थे। उनकी पैनी नजरसे कोई चीज चूकने-मेरे पुज्य पिता पं० सूर्यनारायण व्यासके प्रति उनके छूटने नहीं पाती। मनमें अगाध श्रद्धा थी। वे पारिवारिक और आत्मीयताकी विक्रम विश्वविद्यालयके पुरातत्त्व विभागमें रहते हदतक एक-दूसरेसे जुड़े थे। पूज्य पिताजीपर उन्होंने हुए उन्होंने 'भीमबेटका'की खुदाईकर उससे प्राप्त अनेक लेख लिखे थे। प्राय: ही वे 'भारती-भवन' हमारे 'मृदुपात्र' और सिक्कों तथा अवशेषोंके सहारे सारी आवास चले आते थे और घण्टों अन्तरंग चर्चाका दुनियाको चमत्कृत कर दिया था। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आह्नाद वहाँ झलकता था। महाकाल मैदानपर 'संघ' और मिस्रके 'तुतन खामन'के पिरामिडोंको विश्वकी की शाखा लगती और शीत-ऋतुकी ठंडी-ठंडी सुबह प्राचीनतम सभ्यता माननेवाले पाश्चात्य विद्वानोंकी नजर अक्सर जब वे हाफ पैन्ट पहने, डंडा हाथमें लिये घर भी डॉ॰ वाकणकरके कार्योंपर नतमस्तक हो गयी थी। आ जाते तो अपने बचपनमें मैं इस अद्भुत व्यक्तित्वको बड़े विस्मयसे देखा करता। उन दिनों मैं लगभग ८-९ संसारभरमें उनकी अगाध विद्वत्ताको सराहा गया, प्रशंसा की गयी। विश्वके अनेक विश्वविद्यालयों और विख्यात वर्षका रहा होऊँगा, बच्चोंकी एक हास्यपत्रिकाका एक प्राच्यविदों, पुराविदोंने उन्हें ससम्मान शोधपत्र-वाचनहेत् कार्टून पात्र उनके जैसा ही दिखता था और मैं उनके आमन्त्रित किया। इससे पूर्व भी डॉ० वाकणकरने आनेपर उनसे वैसा ही मजाक करता था। मगर उस उज्जैनकी खुदाईकर पं० सूर्यनारायण व्यासद्वारा संस्थापित विलक्षण विद्वान्ने कभी मुझ अबोध बालककी हरकतोंका सिंधिया प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठानके प्राचीन प्रतिमा बुरा नहीं माना। प्राय: ही वे मुझसे मेरा नाम पूछते और संग्रहालयको असंख्य दुर्लभ प्रतिमाओंसे सुशोभित मैं तुतलाते हुए 'आजशेखर' कहता। तब वे स्नेहसे चपत लगाते हुए कहते—'आज शेखर है भाई! तो कल किया था। डॉ० वाकणकर विलक्षण चित्रकार भी थे। वे क्या होगा?' खड़े-खड़े मिनटोंमें आपका 'स्केच' बना देते, तो बड़े होनेपर तो शनै:-शनै: उनके सान्निध्यका खुदाईमें से प्राप्त प्रतिमाओंको क्षण-तत्क्षण अपने केनवासपर निरन्तर अवसर मिला और विश्वास बढ़ता ही गया, सजीव बना देते। उनके द्वारा निर्मित अनेक चित्र, स्केच-निकटता आती ही गयी। पूज्य पिताजी उनपर सर्वाधिक लैंडस्केप, नक्शे भारतके अनेक पुरातत्त्व संग्रहालयोंका गर्व करते थे और क्यों न करें; उन्होंने सम्राट् विक्रमके

४८ कल्ट	गण [भाग ९४
**************************************	**************************************
काल-निर्धारणकी उनकी शोध-धारणाओंको सप्रमाण	हूं नरा काम की चीज हूँ।'
कृत कालगणनाके सन्दर्भोंमें कृत सम्वत्का स्वर्ण सिक्का	मुझे पत्थर समझकर फेंक मत देना, मैं बड़े
प्राप्तकर सम्पुष्ट जो कर दिया था। इससे पहले	कामका हूँ!
पाश्चात्य-मतिके भारतीय विद्वानोंने विक्रम-समस्याको	इतिहास, पुरातत्त्व और भारतीय संस्कृतिके शिखर-
बड़ा उलझा रखा था—विक्रम हुआ भी या नहीं, कहाँ	पुरुष होते हुए भी उन्हें किसी बातका लेशमात्र भी गर्व
जन्मा, या कितने राजा विक्रम कहलाये—कब जनमे?	नहीं था। सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवनमें
ऐसे निर्भीक प्रश्नोंसे विद्वान् प्रमाण न होनेसे परेशान थे।	मूर्तिमान् था।—डॉ० राजशेखर व्यास
पं० व्यास और डॉ० वाकणकरकी शोध ऐसे सारे	(7)
विद्वानोंका मुँहतोड़ उत्तर हुआ करती थी।	भूल
पं० व्याससे आशीर्वाद और प्रेरणा लेकर उन्होंने	पुरानी बात है, शहरमें एक बड़ी फर्मके मालिककी
भी 'भारती-भवन'-जैसा कला-संग्रहालय 'भारती-	दूकानपर एक साधारण ग्रामीण व्यापारी आया। दूकानके
कला' उज्जयिनीमें सुस्थापित किया था। आज भी	मालिकने उसे गाँवसे सात-आठ सेर असली घी भेज
मध्यप्रदेशको यह सर्वाधिक गतिमान संस्था कला,	देनेको कहा और हाथपेटी खोलकर थैलीमेंसे दस-दस
साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्वका घर बनी हुई है। शायद	रुपयेके चार नोट देते हुए फिर कहा कि 'ये लो चालीस
ही मध्यप्रदेशमें कहीं इतना बड़ा व्यक्तिगत संग्रहालय	रुपये, कम-ज्यादा लगेगा तो फिर देख लिया जायगा।'
और किसीका हो। डॉ० वाकणकरने चित्रकला, इतिहास	वह भाई बिना ही गिने नोटोंको जेबमें रखकर चला
और पुरातत्त्वमें अपने अनेक शिष्य तैयार किये थे। डॉ०	गया।
विष्णु भटनागर, श्रीकृष्ण जोशी, सुरेन्द्र आर्य, डॉ०	लगभग बीस मिनट बाद उसने लौटकर दूकानके
श्यामसुन्दर निगम, डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित, प्रमोद	मालिकसे कहा—'बाबूजी! दस रुपये कम हैं, ये तीस
गणपत्ये-जैसे अनेक सामर्थ्यवान्, प्रतिभावान् विद्वान्	रुपये हैं। यहाँ मैंने नोट गिने नहीं, बाजारमें जरूरत
उन्हींकी परम्पराके हैं तो कला-जगतमें चन्द्रशेखर	पड़नेपर गिने तो दस रुपये कम हुए, आप जल्दीमें भूल
काले, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे अनेक जाने-माने	गये।'
नाम उनकी प्रेरणा पाकर आगे आये हैं।	दूकानमालिकने चश्मेके अन्दरसे ऊपरकी ओर
सारे संसारमें अपने पुरातत्त्वज्ञान और शोध-	देखा तथा रोष एवं ऊबसे भरे शब्दोंमें कहा—'अरे
अनुसंधानके लिये सराहे गये डॉ॰ वाकणकरकी यह	भाई! तुम्हारी भूल हुई होगी। कहीं नोट गिर पड़ा होगा।
विडम्बना ही रही कि वे अपने शहरमें अजनबीसे रहे।	मेरे हाथसे शामतक हजारों रुपये आते-जाते हैं, कभी
'लुप्त सरस्वती नदी' की खोजमें वे अपनी	गिनतीमें भूल नहीं होती।'
अस्वस्थतामें भी लगे रहते थे। दंगवाड़ाकी खुदाईमें तो	उसने कहा—'बाबूजी! भूल तो हरेकसे होती है।
वे मरते-मरते बचे, मगर उन्होंने अपने स्वास्थ्य और	गिनकर देख लीजिये न।' यों कहकर उसने नोटवाला
जीवनकी कभी परवाह भी नहीं की।	हाथ दूकानमालिकके सामने फैलाया।
'पद्मश्री' मिलनेपर जब हम लोगोंने उनका	दूकान–मालिकका मिजाज काबूसे बाहर हो गया।
सम्मान किया था, तो बड़े विकल मनसे उन्होंने एक	उसने ग्रामीण व्यापारी भाईको नीचे उतारते हुए कहा—
मालवी कविता सुनायी थी—	'अब गिनकर क्या करूँ ? अब तो तीस ही रुपये होंगे।
'म्हारे भाटो समझी ने	मुझे बनाकर दस रुपये ऐंठना चाहते हो, यह नहीं होगा।
फेंकी मत दीजो	चाहिये तो माँगकर ले जाओ।'

पढो, समझो और करो संख्या ९] क्या सचमुच बाबूजी आपसे भूल नहीं होती? यों पिताजीके द्वारा मना कर दिये जानेपर क्रोध उत्पन्न नहीं कहकर उसने स्वयं ही नोटोंके बीचसे तह किया हुआ हुआ। मुझे यह भी लगा कि मैं कभी-कभी भगवद्गीता सौ रुपयेका एक नोट निकालकर दुकान-मालिकको देते पढ़ता हूँ, इसलिये गुस्सा नहीं आया। अब मुझे लगा कि हुए कहा—'लीजिये बाबूजी, आपकी भूल' मेरे व्यवहारसे पिताजीको खुशी हुई है। इससे मेरे मनमें दुकान-मालिक क्या बोलता? देखता रह गया। यह आशा जगी कि अब वह मुझे मेरी पसन्दका खिलौना ईनाममें दिलवा देंगे। —व्रजलालराम चन्दा राणा परंतु, मेरे द्वारा वह खिलौना माँगे जानेपर पिताजीने (3) इस बार फिरसे मना कर दिया। अबकी बार मुझे गुस्सा गुस्सा न आनेका उपाय मेरा नाम गोपाल गर्ग है। मैं एक ग्यारह वर्षीय आ गया। तब पिताजीने पूछा कि पिछली बार जब बालक हूँ। मैं पिछले कुछ दिनोंकी घटनाएँ आपके उन्होंने मना किया था, तब मुझे गुस्सा नहीं आया था, सामने रखना चाहता हूँ। एक दिन मैंने अपने पिताजीसे फिर इस बार क्यों आया? तब मुझे यह अन्तर पता चला कहा कि मैं उनसे कुछ चीजें माँगना चाहता हूँ। उन्होंने कि इस बार उस खिलौने और मेरे बीचमें एक लगाव कहा—सोचो कि मैंने उन सबके लिये मना कर दिया बन गया था, जिससे वह खिलौना पानेके लिये मेरे मनमें है। फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि वे कौन-सी चीजें हैं, इच्छा पैदा हो गयी थी। फिर उस इच्छामें विघ्न पड़नेसे जो तुम मुझसे माँगना चाहते थे? तब मैंने उन्हें उन मुझे गुस्सा आ गया। फिर मुझे यह भी समझमें आया खिलौनोंके बारेमें बताया। मेरे बारेमें एक बात यह है कि कि किसी चीजके बारेमें हम सोचें नहीं तो उससे लगाव जब मुझे कोई चीज पानेका मन करता है और वह चीज नहीं बनेगा, तो फिर इच्छा भी नहीं होगी। ऐसी स्थितिमें मुझे नहीं मिलती है, तो मुझे बहुत गुस्सा आता है। उस वस्तुकी प्राप्तिमें बाधा पड़नेसे क्रोध नहीं आयेगा। उन्होंने पूछा कि जब उन्होंने मना किया तो मुझे गुस्सा उसके बाद पिताजी बोले कि एक बार फिरसे मैं वह चीज उनसे माँगूँ। उन्होंने यह भी कहा कि अपने आया क्या? मैंने कहा—नहीं, मुझे गुस्सा नहीं आया। तो उन्होंने पूछा कि जब तुम्हें कोई वस्तु मना कर दी मनमें यह सोच रखो कि अगर मिल गयी तो ठीक, और नहीं मिली तो भी ठीक है। फिर मैंने उनसे अपनी पसन्दका जाती है तो तुम्हें गुस्सा आता है। इस बार क्यों नहीं आया ? मैं इसका जवाब नहीं दे सका। तब उन्होंने मुझे एक अन्य खिलौना माँगा। तब पिताजीने कहा—अभी भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका बासठवाँ श्लोक सुनानेके नहीं, चार दिन बाद दिलवाऊँगा। उससे मुझे कुछ गुस्सा इसलिये आया; क्योंकि समर्पण पूरा नहीं था, परंतु गुस्सा लिये कहा, जो इस प्रकार है— काफी कम आया; क्योंकि कुछ समर्पण तो था। मुझे मेरी ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। पसन्दकी वस्तु मिले तो अच्छा और अगर नहीं भी मिले सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ तो भी अच्छा-यह समर्पण बढानेके मार्गपर मैं आगे जिसका तात्पर्य यह है कि अपनी पसन्दकी किसी वस्तुपर सोचनेसे हमारे मनमें उसके प्रति लगाव पैदा बढ़ता रहूँगा। मुझे विश्वास है कि गुरुजीकी कृपासे एक होता है, जिससे वह वस्तु पानेकी इच्छा पैदा होती है दिन मुझे पूरी सफलता प्राप्त होगी। और उसकी प्राप्तिमें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार किसी वस्तुकी अप्राप्तिमें आनेवाले तब मुझे समझमें आया कि जो चीजें मैंने अपने क्रोधका कारण उस वस्तुके प्रति आसक्ति है और गुस्सेसे पिताजीसे माँगी थीं, मैंने उन चीजोंके बारेमें ज्यादा नहीं बचनेका उपाय है कि उस वस्तुके प्रति आसक्ति ही न सोचा था, इसलिये कामना उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये रखी जाय।-गोपाल गर्ग

मनन करने योग्य लक्ष्मीजीके अनुकूल वातावरण तैयार करें सोने देते थे। ये अकारण ही वैर-विवाद मोल ले लेते थे। यह एक दिन लक्ष्मीजी इन्द्रके दरवाजेपर पहुँचीं। मुझे अनुचित लगा। अत: मैं वहाँसे बुरा मानकर चली आयी।' बोलीं—'हे इन्द्र! मैं तुम्हारे यहाँ निवास करना चाहती हूँ।' 'असुरोंकी स्त्रियोंने पतियोंकी आज्ञा मानना छोड दिया था। पुत्रको पिताकी परवा न रही। शिष्य आचार्योंकी तरफ इन्द्रने आश्चर्यसे कहा—'कमले! आप तो असुरोंके

यहाँ बड़े आनन्दपूर्वक रहती थीं। वहाँ आपको कुछ कष्ट न था। मैंने कितनी ही बार आपको अपने यहाँ बुलानेका

महान् प्रयत्न किया, परंतु तब आप न आयीं और आज बिना बुलाये मेरे द्वारपर पधारी हैं। सो देवि! इसका कारण मुझे समझाकर कहिये।'

लक्ष्मीजीने प्रसन्नमुख उत्तर दिया— 'इन्द्र! कुछ समय पूर्व असुर बड़े धर्मात्मा थे। वे कर्तव्यपरायण रहते

थे। अपना सब काम नियमित रूपसे करते थे; परंतु उनके ये सद्गुण धीरे-धीरे नष्ट होने लगे।' 'प्रेमके स्थानपर ईर्घ्या-द्वेष और क्रोध-कलहका

उनके परिवारोंमें निवास रहने लगा। अधर्म, दुर्गुण और तरह-तरहके व्यसनों (मद्यपान और मांसभक्षण)-की वृद्धि होने लगी। इन दुर्गुणोंमें भला मैं कैसे रह सकती हूँ?' 'मैंने सोचा कि इस दुषित वातावरणमें अब मेरा निर्वाह

नहीं हो सकता। इसलिये दुराचारी असुरोंको छोड़कर मैं तुम्हारे यहाँ 'सद्गुणोंमें' निवास करने चली आयी हूँ।' इन्द्र चिकत रह गये। लक्ष्मीजीके निवास करनेका

रहस्य उन्हें मालुम होने लगा। उन्होंने कहा— 'हे भगवती! वे और कौन-कौन-से दोष हैं. जिनके कारण आपने असुरोंको छोड़ा है, कृपा करके मेरे तथा आनेवाली संतानके लिये उन त्रुटियोंको विस्तारपूर्वक मुझे बतलाइये,

जिससे मैं भविष्यमें सावधान रहूँ।' लक्ष्मीजी इन्द्रपर विशेष कृपालु हुईं। उन्होंने वे सब रहस्य बता दिये, जिनके कारण उन्होंने असुरोंका परित्याग किया था। लक्ष्मीजीने कहा—'इन्द्र! जब कोई वयोवृद्ध सत्पुरुष

ज्ञानविवेकका उपदेश करते थे, तो असुर लोग उनका उपहास करते थे या उपेक्षासे निद्रा लेने लगते थे। यह मुझे बुरा लगा।'

'वृद्ध और गुरुजनोंके सम्मानका विचार न करके उनकी बराबरीके आसनपर बैठते थे। सत्कार, शिष्टाचार और अभिवादनकी बात वे लोग भूल गये थे। लड़के माता-पितासे मुँहजोरी करने लगे थे। वे बहुत राततक घूमते-फिरते,

मुँह मटकाने लगे। समाजकी समस्त मान-मर्यादाएँ जाती रहीं।' 'वे लोग सुपात्रोंको दान और लॅंगड़े-लूले भिखारियोंको भिक्षा न देकर धनको विलासितामें खर्च करने लगे। घरके

बच्चोंकी परवा न करके बूढ़े-बूढ़े पुरुष चुपचाप मधुर मिष्ठान्न अकेले ही खाते। जहाँ ऐसे निर्लज्ज आचरण होते हैं, उनके यहाँ इन्द्र! मैं भला किस प्रकार रह सकती हूँ ?' 'ये असुरलोग फलदार और छायादार हरे-भरे वृक्षोंको काटने लगे। दिन चढेतक सोते रहते थे, प्रहर रात्रि

गयेतक खाते रहते. भक्ष्य और अभक्ष्य अन्नका विचार न करते। सत्कर्म करना तो दूर, दूसरोंको करते देखते तो उसमें भी विघ्न उपस्थित करते।' 'स्त्रियाँ फैशन, आलस्य और व्यसनोंमें व्यस्त रहने

लगीं। घरमें अनाजका अनादर होने लगा, चूहे खाकर अन्नको नष्ट करने लगे। खाद्य पदार्थ खुले पड़े रहते, जिन्हें कुत्ते-बिल्ली चाटते।' 'घरमें ही पापाचार, स्वार्थ, पक्षपात बढ़ गया।असुरोंकी वृत्ति मादक द्रव्योंमें, जुए-शराब-मांसमें, नाच-तमाशोंमें बढ़ने

लगे। उनके ऐसे आचरण देखकर मेरा जी जलने लगा। दुखी होकर एक दिन मैं चुपचाप असुरोंके घरोंसे चली आयी।अब वहाँ दरिद्रताका ही निवास होगा।' 'हे इन्द्र! तुम ध्यानपूर्वक सुनो। मैं परिश्रमी, कर्तव्यपरायण, विचारवान्, सदाचारी, संयमी, मितव्ययी,

लगी। लापरवाहीका हर जगह राज्य हो गया। ऐसी दशामें

नौकरोंकी खूब बन पड़ी। वे चुरा-चुराकर अपना घर भरने

जागरूक और नियमित उद्योग करते रहनेवालेके यहाँ निवास करती हूँ। जबतक तुम्हारा आचरण धर्मपरायण रहेगा, तबतक तुम्हारे यहाँ मैं बनी रहूँगी।' लक्ष्मीके इस कथनने इन्द्रको एक नयी शक्ति दी।

उन्होंने बड़ी श्रद्धा और आदरपूर्वक लक्ष्मीजीको अभिवादन किया और कहा—'हे कमले! आप मेरे यहाँ सुखपूर्वक रहिये। मैं ऐसा कोई अधर्ममय आचरण नहीं आनातपार्वीङकरको विकल्पको अन्तर्भ हो सम्बन्ध हो से अन्तर्भ हो से अन्तर्भ हो से अन्तर्भ हो से अन्तर्भ हो से अन्तर

गीताप्रेससे प्रकाशित रोचक कहानियोंकी पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय

भूले न भुलाये (कोड 2047)—प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें कुल ३२ कहानियाँ विशिष्ट रेखाचित्रोंसिहत प्रकाशित की गयी हैं। यद्यपि इन कहानियोंकी आधारिशला ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक है फिर भी मानवीय जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इनमें पूर्णरूपसे हुई है, जिसके व्याजसे परोक्ष अथवा अपरोक्ष नैतिक शिक्षा भी हमें प्राप्त होती है। मूल्य ₹२५

आदर्श कहानियाँ (कोड 1093)—इस पुस्तकमें स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित ३२ कहानियोंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹१५

चोखी कहानियाँ (कोड 147)—इस छोटी-सी पुस्तिकामें अत्यन्त सरल तथा रोचक भाषामें भगवान्का भरोसा, अधम बालक, स्वाधीनताका सुख, सत्य बोलो, सर्वस्वदान आदि ३२ सुन्दर कहानियोंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹१२

परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ (कोड 888)—इस पुस्तकमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तको पुष्ट करनेवाली २४ सत्य घटनाओंका सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹२५

एक लोटा पानी (कोड 122)—इस पुस्तकमें एक लोटा पानी, बलिदान, मूर्तिमान् परोपकार, भक्त रिवदास, अहिंसाकी विजय आदि २४ कहानियोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य ₹२५

प्रेरणाप्रद-कथाएँ (कोड 1782)—मानव-जीवनके विकासमें सत्कथाओंका विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तकमें बावन पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹२५

उपयोगी कहानियाँ (कोड 137)—इस पुस्तकमें भला आदमी, सच्चा लकड़हारा, दयाका फल, मित्रकी सलाह, अतिथि-सत्कार आदि ३६ प्रेरक कहानियोंका अनुपम संग्रह है। सरल तथा रोचक भाषामें संगृहीत ये कहानियाँ बालकोंके जीवन-निर्माणमें विशेष सहायक हैं। मूल्य ₹२०

प्रेरक कहानियाँ (कोड 1308)—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित बुद्धिमान् बनजारा, हीरेका मूल्य आदि ३२ सुन्दर कहानियोंका संकलन। मूल्य ₹१२

उपदेशप्रद कहानियाँ (कोड 680)—ज्ञान, वैराग्य, सेवा, परोपकार, ईश्वर-विश्वास, भगवद्धिक्तिकी संवर्द्धक १२ कहानियोंका मनोहर संकलन। मूल्य ₹२०

शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ (कोड 283)—लौकिक-पारलौकिक कल्याणकी सिद्धिहेतु गृहस्थ साधकोंके लिये उपदेशप्रद ग्यारह कहानियोंका एक सुन्दर संकलन। मूल्य ₹१५

पौराणिक कहानियाँ (कोड 1669)—विभिन्न पुराणोंसे संकलित शिवभक्त नन्दभद्र, नारायण-मन्त्रकी महिमा, कीर्तनका फल आदि ३६ उपयोगी कहानियोंका सुन्दर संग्रह। मूल्य ₹२०

पौराणिक कथाएँ (कोड 1624)—इस पुस्तकमें परिहतके लिये सर्वस्व त्याग, मौतकी भी मौत, भक्तका अद्भुत अवदान, सत्यव्रत भक्त उतथ्य आदि अनेक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹१५

सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ (कोड 1673)—इस पुस्तकमें भक्त श्रीरामशरणदासजीके द्वारा संकलित तथा कल्याणमें पूर्वप्रकाशित स्थानका प्रभाव, गाँवकी बेटी अपनी बेटी, तेलीका बैल बनकर ऋण चुकाया आदि ३६ प्रेरक एवं सत्य घटनाओंका संग्रह किया गया है। मृल्य ₹२८

तीस रोचक कथाएँ (कोड 1688)—प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न पुराणोंसे संकलित तीस शिक्षाप्रद एवं रोचक कथाओंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹१५

गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ (कोड 1938) पुस्तकाकार—पद्मपुराणमें वर्णित गीता-पाठके अठारहों अध्यायके माहात्म्यका सचित्र वर्णन। मूल्य ₹१० व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

गीता-दैनन्दिनी — गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।) व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०२१) अब उपलब्ध-मँगवानेमें शीघ्रता करें। (इस वर्ष केवल दो आकार-प्रकारमें सिमित संख्यामें गीता-दैनन्दिनी का प्रकाशन किया गया है)

पूर्वकी भाँति दोनों संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहुर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद

मूल्य ₹ ८५

पॉकेट साइज— सजिल्द आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक

मृल्य ₹ ४०

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क								
	97	(911	<i>-</i> 1	र युगमु।स्रत उपरा	٠, ١	अरा	"ສ <u>ີ</u>	
कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	२००	1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	300	584	सं० भविष्यपुराण	२००
616	योगाङ्क (परिशिष्टसहित)	२८०	789	सं० शिवपुराण	२५०	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१५०
636	तीर्थाङ्क	२३०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२५०	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	220
604	साधनाङ्क	२५०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०	1132	धर्मशास्त्राङ्क	200
1773	गो-अङ्क	२००	1135	भगवन्नाम-महिमा	१६०	1189	सं० गरुडपुराण	200
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२८०		और प्रार्थना-अङ्क		1592	आरोग्य-अङ्क	२६०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	१००	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	220	1610	महाभागवत (देवीपुराण)	१३०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१५०	517	गर्ग-संहिता	१६५	1793	श्रीमदेवीभागवताङ्क -पूर्वार्द्ध	१००
43	नारी-अङ्क	300	1113	नरसिंहपुराणम् -सानुवाद	१००	1887	,, ,, अजिल्द उत्तरार्ध	७५
659	उपनिषद्-अङ्क	२३०	1362	अग्निपुराण	२६०	1985	श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क-	
279	सं० स्कन्दपुराण	४२५	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१५०		सानुवाद	२५०
40	भक्त-चरिताङ्क	२५०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	300	2066	श्रीभक्तमाल-अङ्क	२५०
1183	सं० नारदपुराण	२२०	657	श्रीगणेश-अङ्क	१८०	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१५०
667	संतवाणी-अङ्क	२५०	42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०	2125	श्रीशिवमहापुराणाङ्क- पूर्वार्ध	१४०
587	सत्कथा-अङ्क	२३०	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१२०	2154	" " –उत्तरार्ध	१४०
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१८०	791	सूर्याङ्क	१५०	2235	श्रीराधामाधव-अङ्क	१४०

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005 book.gitapress.org gitapressbookshop.in